एक ईंट एक रूपया

(कहानी - संग्रह)

लेखक :

ओमप्रकाश गर्ग 'मधुप'

प्राप्ति स्थान

अग्रोहा धाम

अग्रोहा - 125047

(हिसार) हरियाणा

एक ईंट एक रूपया

(कहानी - संग्रह)

लेखक :

ओमप्रकाश गर्ग 'मधुप '

प्रकाशक:-

अग्रोहा विकास ट्रस्ट

अग्रोहा धाम, अग्रोहा - 125047

(हिसार) हरियाणा

दूरभाष: 01669-281127, मो.: 919896390060

E-mail:agrodhampatrika@gmail.com

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : 1980-88

द्वितीय संस्करण: 1994

तृतीय संस्करण: 2006

चतुर्थ संस्करण: 2017

मूल्य: 25 रू

पच्चीस रूपया

समर्पण

अतीत के उस महान् गौरव को,
जिसकी स्मृतियों के सहारे
हम आज भी जी रहे हैं।

अग्रसमाज के पितामह प्रात: स्मरणीय 108 महाराज श्री विष्णु अग्रसेन जी विश्व की उन महान विभूतियों मे से थे, जिन्हें परमपिता परमात्मा के पश्चात पूजा का सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। इन्हीं के नाम पर अग्रवंश तथा उसके अठारह गोत्रो का प्रचलन हुआ था। इन्हीं महाराज अग्रसेन जी, उनकी राजधानी अग्रोहा व अग्रवंशियों से सम्बन्धित प्राचीन किंवदन्तियों , लोकवाणियों तथा चली आ रही मान्यताओं को आधार बना कर इस पुस्तिका में अठारह कहानियां लिखी गई हैं। ये कहानियां कोई इतिहास नहीं हैं, परन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर इनका गठन किया है। इसका श्रेय सत्यान्वेषक व शोधकर्त्ताओं को है। मैंने तो अपने आदि पुरूष के बारे में प्रचलित मान्यताओं को छोटी-छोटी कहानियों में पिरोने का प्रयत्न - भर किया है। मेरे समाज के नन्हें नागरिकों , नौनिहालों , नवयुवकों को इनसे तनिक भी लाभ और ज्ञानार्जन हो पाया तो मैं अपने प्रयास को सार्थक एवं स्वयं को धन्य समझूंगा।

धन्यवाद!

ओमप्रकाश गर्ग 'मधुप'
88 अग्रवाल भवन मार्ग,
बाड़मेर (राजस्थान)
पिन -344001

सूत्र-बन्धन

क्रमांक	पृ.सं.
1. श्री गणेश	5
2. समाजवादी सम्राट	9
3. गणों की स्थापना	12
4. सिंहनी का सपूत	15
5. इक ईंट, एक रूपया	18
6. शूरसेन	22
7. सन्देह का शाप	25
8. इन्द्र को अभय	29
9. पितृमुक्ति	32
10. माधवी के लिये	35
11. महालक्ष्मी का वरदान	39
12. ताम्बे का तालाब	41
13. अठारहवां पुत्र	44
14. बलि का अश्व	47
15. नागकन्याओं के चोले	51
16. जसराज	56
17. संन्यासी का शाप	59
18. अग्रोहा -उद्धार	63
19. लक्खी-तालाब	65
20. सती शीला	67
21. अग्रश्रेणी का अन्त	70

श्री गणेश

देवभूमि भारत को अवतारों की क्रीड़ा – स्थली कहा जाता है। इस पवित्र भूमि में भगवान श्री राम, योगिराज श्री कृष्ण, महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी और गुरू नानक सरीखे महापुरूषों ने जन्म लिया । ईसामसीह ने भी इसी धरती की रज को माथे लगा कर ज्ञान का प्रकाश पाया । लेनिन ने साम्यवाद का तत्वदर्शन भारत के ही सांख्यिकी शास्त्र से लिया । धर्म– धरा भारत से ही सर्वप्रथम ज्ञान का प्रकाश सारे विश्व में फैला । इसी पावन धरती में आज से लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व एक महान विभूति ने जन्म लिया था, जिसने इसकी पावन– स्मृतियों में एक और ज्वलन्त अध्याय जोड़ा । ये महान विभूति थे– अग्रोहा –नरेश महाराज श्री अग्रसेन।

उस समय देश में राजवंशों की भरमार थी। सत्ता – मद में लिप्त राजा एक दूसरे के राज्य को हड़पने , ब्राह्मणों से अपनी प्रशस्तियां लिखवाने और सामन्तशाही के चक्कर में उलझ रहे थे। एक तन्त्रीय शासन – प्रणाली के शासक मनमानियां करने लगे थे। अत्याचार और दुराचार बढ़ रहे थे। चाटुकार तथा राजतन्त्र के पिटठू मौज उड़ा रहे थे। आम जनता स्वेच्छाचारी राजाओं और उनके चाटुकारों के बोझ तले दबी जा रही थी। दम्भी और लोभी राजा स्वयं को भगवान का प्रतिनिधि बता कर निरंकुश बन गये थे। ऐसे समय में जब निराशा का घोर अंधकार सारे भारत में छा रहा था, आशा का सूर्य बन कर उदित हुए श्री अग्रसेन। उन्होंने समाजवाद तथा आदर्श शासनतंत्र के रूप में लोकतंत्र की प्रकाश– रश्मियां बिखेर कर जग में उजियारा कर दिया।

इस महान विभूति ने उस समय की अव्यवस्थित राजनीति और आपाधापी को देख, समझ लिया कि एकतन्त्रीय शासन– प्रणाली को कीड़ा लग चुका है। इसमें अब सुधार की कोई आशा नहीं है। यह दीमक लगे जीर्ण– शीर्ण भवन की तरह एक न एक दिन लड़खड़ा कर गिरेगी ही। अत: उन्होंने इसके प्रतिकार में एक नयी व्यवस्था को जन्म दिया । समाज के उपेक्षित वर्गो को संगठित किया। धीरे –धीरे संगठन सबल हो गया तो उन्होंने उसे एक राज्य का स्वरूप दे दिया और

अपना एक पृथक – साम्राज्य स्थापित कर लिया । अग्रोदक नाम से नया एवं अभूतपूर्व नगर बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया । यही अग्रोदक नगर कालान्तर में अग्रोटक तथा फिर अग्रोहा के नाम से विख्यात हुआ । इस नगर में सवा लाख घरों की सुव्यवस्थित बस्ती थी। यहीं एकतन्त्रीय शासन –व्यवस्था को समाप्त कर श्री अग्रसेन ने विश्व में सर्वप्रथम अपने ढंग की अनोखी लोकतन्त्रीय प्रणाली का शुभारंभ किया। यही राज्य आगे चलकर आग्रेय गण के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

महाराज अग्रसेन ने जनहित एवं जन– कल्याण के लिये ही शासन किया। उन्होनें जन्म, जाति या धन के आधार पर ऊंच – नीच और भेद–भाव को समाप्त कर सभी नागरिकों को समान अधिकार दिये। कृषि और उद्योग–धन्धों के लिये राज्य से सहायता व पुरस्कारों की व्यवस्था की। यज्ञों में होने वाली बलि व जीव – हत्या को कानून बनाकर समाप्त कर दिया। जुआ खेलना व शराब पीना अपराध घोषित किया। नारी को समाज में सम्मानित व प्रतिष्ठित पद दिलाया।

अग्रोहा में परिस्थिति –वश कोई गरीब हो जाता या कोई गरीब बाहर से आकर वहां बसता तो प्रत्येक घर से एक रूपया व एक ईंट का उपहार उसे दिया जाता था। यह अपने आप में एक अनोखी व अभूतपूर्व परम्परा थी । साम्यवाद, विश्वबन्धुत्व तथा ट्रस्टीशिप का सही तथा प्रत्यक्ष उदाहरण इस प्रकार का अन्यत्र कहीं नहीं मिलता । इस आधार पर निस्संकोच कहा जा सकता है कि महाराज अग्रसेन विश्व में ट्रस्टीशिप के सृष्टा और समाजवाद के प्रथम प्रणेता थे।

महाराज अग्रसेन बड़े नीतिज्ञ तथा दूरदर्शी थे। वे जानते थे कि ज्यों–ज्यों किसी की प्रसिद्धि बढ़ती है, त्यों –त्यों उसके शत्रु भी बढ़ते है। अग्रोहा की समृद्धि के साथ उसकी प्रसिद्धि बढ़ी तो अन्य राज्यो की आंखें उस ओर उठने लगी । अग्रसेन इससे अनभिज्ञ नहीं थे। वे कायर नहीं थे। बड़े पराक्रमी तथा प्रबल योद्धा थे। परन्तु युद्ध में जन–धन का नाश उन्हें पसन्द नहीं था। उन्होनें नीति से काम लिया । तत्कालीन बड़े– बड़े और शक्तिशाली राज्यों से मित्रता गांठनी शुरू की। दौत्य –सम्बन्ध बनाये। व्यापार–व्यवसाय के नये– नये सम्बंध स्थापित किये। प्रबल एवं बलशाली राजाओं से वैवाहिक गठबंधन जोड़े । स्वयं उन्होंने अठारह विवाह कर अपने सम्बंधो का विस्तार किया। नागवंश के राजा उस समय सबसे शक्तिशाली माने जाते थे। कोलपुर के नागराज महीधर की पुत्री सुन्दरावती तथा नागराज कुमुद की पुत्री माधवी से स्वयं विवाह किये। नागराज

दशानन की पुत्रियों से अपने पुत्रों के विवाह कर संपूर्ण नागवंश को अपना हितैषी बना लिया। देवताओं के राजा इन्द्र को युद्ध में परास्त कर उससे सन्धि कर ली। उस समय की परम्परा के अनुसार अठारह अश्वमेध – यज्ञ कर देश– विदेश में यश व ख्याति अर्जित की।

महाराज अग्रसेन मां लक्ष्मी के पक्के भक्त थे और यज्ञों में हिंसा के कटटर विरोधी । अश्वमेध– यज्ञ में एक वार पुरोहितों ने बिना बलि दिये पूर्णाहुति देने से इन्कार कर दिया। बलि न देने पर यज्ञ का बहिष्कार करने व महाराज को अपमानित करने की धमकी भी दी। परन्तु अग्रसेन अहिंसा के अपने सिद्धांत से नही डिगे , वे इस निर्णय पर अडिग रहे कि प्राणियों की हत्या करने से धर्म नहीं होता । बलि दिए बिना यज्ञ पूर्ण नहीं होगा, वे इस बात को नहीं मानते थे। उन्होंने पुरोहितो का विरोध किया । स्वयं ही मां लक्ष्मी तथा ब्रह्माजी का आहवान करने लगे । कहते हैं कि ब्रह्माजी ने स्वंय प्रकट होकर यज्ञ का हव्य ग्रहण किया तथा उन्होंने बलि – प्रथा की कड़ी भर्त्सना की।

इस प्रकार मां लक्ष्मी व प्रजापति ब्रह्मा की कृपा, इन्द्र तथा नागवंश की मित्रता एवं स्वयं के बुद्धि –कौशल से अग्रसेन ने आग्रेय–गण को अपने युग का सर्वशक्तिमान , समर्थ एवं समृद्ध साम्राज्य बना दिया । उन्होंने 108 वर्षो तक निर्विघ्न शासन किया। फिर कुलदेवी मां लक्ष्मी की प्रेरणा से बड़े पुत्र विभु को अपना उत्तराधिकारी बना कर वानप्रस्थ आश्रम में चले गये। उनके नाम से उनकी सन्तति आज भी अग्र या अग्रवाल कहलाती है। उनके अठारह पुत्रों के नाम से अठारह गोत्र प्रचलित है। भारत में प्रतिवर्ष आश्विन शुक्ला प्रथमा को श्री अग्रसेन जी महाराज की जयन्ती अत्यन्त ही हर्षोल्लास व धूम– धाम से मनाई जाती है। भारत सरकार ने भी 24 सितम्बर सन 1976 को उनकी जयन्ती पर विशेष डाक टिकट जारी कर इस महान विभूति को अपनी श्रद्धांजलि दी थी। हमें उन पर गर्व है।

महाराज अग्रसेन तथा आग्रेय गणराज्य के सम्बंध में वर्णन भविष्य पुराण के महालक्ष्मी वृत कथा अर्थात अग्रवंश वंशानुकीर्तनम तथा उरू – चरितम ग्रन्थों में प्राप्त होता हे। महाभारत के वनपर्व 255/20 में भी कर्ण द्वारा जीते गये राज्यों की सूची में आग्रेयान गण का नाम आता है, जो आग्रेय गण ही हो सकता है। पाणिनि के अष्टाध्यायी में भी इनका उल्लेख आता है।

इतिहासकारों ने अग्रोदक , अग्रोटक , आग्रेय ,अग्रश्रेणी , अग्रोहा आदि

नामों से अग्रसेन जी के राज्य तथा उसकी राजधानी का वर्णन किया है। फ्रेन्च इतिहासकार सांमर्ता ने अग्रोहा को अगलस व यहां के निवासियों को अग्लस्सि लिखा है। सिकंदर के साथ विश्व विजय अभियान में उसके साथ आये यूनानियों ने अपने स्मरणों तथा विवरणों में अग्लसोई नाम से अग्रोहा का वर्णन किया है।

सन 1888–89 में सी . डी. रोजर्स ने अन्त:प्रेरणा से प्रभावित होकर अग्रोहा के टीलों की खुदाई कराई थी। यदयपि यह खुदाई कार्य किसी कारणवश पूर्ण नहीं हो पाया था तथा बीच में ही अधूरा छोड़ दिया गया था, तथापि जितना भी कार्य हो पाया था, उससे बहुत ही उपयोगी एवं आशाजनक तथ्य प्रकाश मे आयें हैं। खुदाई में सिक्के, मुर्तियां , मिटटी के व धातु के बर्तन , औजार, अस्त्र– शस्त्र इत्यादि व मकानों –भवनों के खण्डहर अनेकों ही ऐसे उपकरण प्राप्त हुए हैं, जिनके मुख से इतिहास अपनी कहानी कह रहा है। आज अग्रोहा के टीलों की दरारों में से भूतकाल का वैभव झांक रहा है और पुकार–पुकार कर कह रहा है , मेरी ओर देखो, मेरी बात सुनो, मेरा उद्धार करो।

भारत की राजधानी दिल्ली से लगभग 200 कि. मी. दूर हरियाणा के हिसार जिले के अंतर्गत राष्ट्रीय राजमार्ग नं. 10 पर यही अग्रोहा एक छोटे से ग्राम के रूप में विद्यमान है। हिसार से 20 किलोमीटर पर प्राचीन अग्रोहा टीलो के रूप में लगभग 650 एकड़ भूमि में फैला हुआ है।

वल्लभ के पुत्र श्री अग्रसेन के काल को इतिहासकारों ने ईसा से लगभग 1400 से 1200 वर्ष पूर्व का माना है। शास्त्रों के अनुसार उनका काल लगभग 5000 वर्ष पूर्व आज से आता है । कुछ भी हो, महाराज अग्रसेन हमारे देश की एक महान विभूति थे। उन्होनें विश्व के रंगमंच पर सर्वप्रथम लोकतंत्रीय प्रणाली तथा समाजवाद और ट्रस्टीशिप का संदेश दिया। उनका जीवन चरित्र हमारे लिये सदा आदर्श एवं अनुकरणीय बना रहेगा।

✦ ✦ ✦

समाजवादी सम्राट

प्राचीन काल में जब कलियुग का सूत्रपात हो रहा था, वैश्य कुल में श्री देवल वल्लभ के घर एक होनहार पुत्र ने जन्म लिया, जो बड़ा वीर , पराक्रमी, विद्वान तथा नीतिकुशल था । उसका नाम अग्र था जो आगे चलकर महाराज अग्रसेन के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ । इसी ने विश्व में सर्व –प्रथम सत्ता में गणतान्त्रिक पद्धति , शासन में समाजवादी व्यवस्था तथा ट्रस्टीशिप का सूत्रपात किया। सच्चे अर्थो में महाराज अग्रसेन ही समाजवाद तथा गणतन्त्र के जन्मदाता थे।

भारत देश में उस युग में जब कि समाज के सभी क्षेत्रों में क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों का प्रचण्ड प्रभुत्व था, धर्म और कर्मकाण्ड के नाम पर, ज्ञान व विज्ञान के नाम पर विद्या और बुद्धि के बल पर ब्राह्मणत्व अपना पूर्ण वर्चस्व बनाये हुए था तो क्षत्रिय गण भी अपनी सत्ता के बल पर प्रभु बने हुए थे। ब्राह्मण – वर्ग सत्ताधारियों के गुण – गान करने में ही व्यस्त था तो सत्ता पक्ष केवल ब्राह्मणों को ही उनके ज्ञान – विज्ञान की उपलब्धियो के कारण मान्यता देता था। वैश्य – वर्ग जो समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है, जिसके बिना समाज साधनहीन , श्री –हीन और धन–हीन हो नष्ट हो सकता है, की घोर उपेक्षा की जा रही थी। वैश्य –वर्ग , जिसके धन बल पर ही ब्राह्मणों के ज्ञान – विज्ञान के अन्वेषण तथा सत्ताधिकारियों के शासन की नीव टिकी हुई थी, इससे क्षुब्ध था।

हमारे सारे ही प्राचीन ग्रन्थ क्षत्रियों एवं ब्राह्मणो की प्रशस्तियों से भरे पड़ें है। कही भी किसी वैश्य कुल भूषण के लिये प्रशंसा के शब्द नहीं मिलते । वैश्य वर्ग इस स्थिति से दुखी था । उनके बड़े से बडे बलिदान, त्याग का लाभ भी बढ़ाचढा कर क्षत्रियों को व ब्राह्मणों को ही दिया जाता था। संख्या तथा वैभव में अधिक होते हुए भी , सभी प्रकार से योग्य और सक्षम होते हुए भी तथा सब कुछ करने –धरने पर भी , यश –लाभ उनके स्थान पर अन्यों को मिलें , यह कब तक सहा जा सकता था। भीतर ही भीतर असन्तोष बढ़ रहा था । इसे नेतृत्व का सम्बल दिया अग्रसेन ने । इस स्थिति का विरोध करने के लिए वे सर्व – प्रथम

सबसे आगे आये । व्यावसायिक दृष्टि से तो वैश्यवर्ग पहिले ही संगठित था। सैन्य – बल भी इसके पास था। वैश्य स्वयं रण – कुशल एवं योद्धा भी थे। उनका व्यापार व्यवसाय दूर– दूर देश – देशान्तरों में चलता था। विपणन – कार्य समुद्र से भी होता था। माल व धन का एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवहन स्थल व जल – मार्गो से बड़ी मात्रा में होता था। यह सब वैश्य स्वयं अपनी जोखिम पर ही करते थे। जंगली लुटेरों व जल – दस्युओं से वे स्वयं ही भिड़ते थे। उनके पास धन, बल व बुद्धि किसी बात की कमी नहीं थी। कमी थी तो केवल राजनैतिक दृष्टिकोण से उन्हें संगठित करने की। यह कार्य किया अग्रसेन जी ने । उन्होंने समस्त वैश्यों को नये सिरे से संगठित कर अपना अलग संघ बनाया और नये राज्य की स्थापना की, एक ऐसा राज्य, जो वैश्य वर्ग का अपना पृथक राज्य था, जिसमें समस्त शासन– तंत्र केवल वैश्यों के ही हाथ में था। सत्ता के सर्वोच्च पद, राजा से लेकर राज्य कर्मचारी तथा जन– सेवक तक सभी वैश्य थे। वैश्य ही राजा और वैश्य ही प्रजा, एक सर्वथा नये ढंग का , अनोखा तथा अभूतपूर्व राज्य, जो चर्चा का विषय बन गया।

उस समय की राजनीति में यह एक विस्फोट था। तत्कालीन राजाओं व ब्राह्मणों के लिये एक चुनौती थी। विशेषकर क्षत्रियों को सत्ता पर अपना एकाधिकार समाप्त होता दिखने लगा। उन्होंने इस सत्ता को उलट देने के बहुतेरे प्रयत्न किये। युद्ध , छल और कपट सभी हथकण्डों को उन्होंने अपनाया, परन्तु अग्रसेन के कुशल नेतृत्व में पनपती वैश्य शक्ति , धन , बल और बुद्धि के सामंजस्य के आगे वे हीन थे। उनके पास शक्ति थी, बुद्धि ब्राह्मणों की उनके साथ थी, परन्तु धन? धन का प्रश्न बड़ा विकट था। वैश्यों के असहयोग के कारण उनकी आर्थिक स्थिती पतली हो रही थी। दासों और सेवकों पर कर लगा कर राज्यकोष नहीं भरे जा सकते थे। केवल कृषकों के सहारे युद्ध लड़ने के लिये साधन व सेना जुटाई जा सकती थी। अत: उन्हें मुंह की खानी पड़ी । देवलोक का राजा इन्द्र भी इस वैश्य – राज्य से न जीत सका । उसने भी अग्रसेन से डर कर देवऋषि नारद को मध्यस्थ बनाकर उससे संधि कर ली। मित्रता के बंधन प्रगाढ़ बने रहे, इस हेतु इन्द्र ने अपने देश की एक श्रेष्ठ अप्सरा भी उन्हें भेंट कर दी। इससे अग्रसेन का वर्चस्व ओर भी बढ़ गया। हताश हो क्षत्रिय राजा गण हाथ मलते, वैश्य –गण राज्य को , मौन रह बढ़ते , फलते– फूलते देखते रहे। अग्रसेन के सबल नेतृत्व में वैश्व– वर्ग का यह राज्य निरन्तर साधन– सम्पन्न हो सुख– समृद्धि की ओर अग्रसर होता रहा। राज्य साम्राज्य बन गया। राजा अग्रसेन महाराज अग्रसेन बने।

ब्राह्मण– वर्ग धीरे–धीरे स्वयं ही नत हो झुक गया। महाराज अग्रसेन को मान्यता दे दी गई । मुनी–ऋषि , विद्वान पण्डित , मनीषी उनकी सेवा में आने लगे तथा समुचित आदर– सम्मान पाकर तृप्त होने लगे। सम्राट बन कर भी महाराज अग्रसेन ने समाज की प्रतिष्ठा को सर्वोपरि माना। अपने राज्य में समाजवाद की ही प्राण– प्रतिष्ठा की। सब सम्पति समाज की इस मान्यता को प्रतिस्थापित किया। उन्होंने नियम बना कर समाज के प्रत्येंक वर्ग को समान अधिकार प्रदान किये। सही माने में वे एक सच्चे समाजवादी सम्राट थे। उनके शासन में व्यवस्था इस प्रकार थी।

● मानव समाज में कोई भेद नहीं समझा जाता था ।

● धन, व्यवसाय, जन्म , जाति , वर्ण , कुल अथवा धर्म के नाम पर कोई ऊंच – नीच या छोटा – बड़ा नहीं था।

● खेती द्वारा अन्न उत्पन्न करने वालों को सम्मान दिया जाता था।

● जीव–हत्या व बलि– प्रथा कानूनन अपराध थी।

● गो–पालन कर गो– वंश की वृद्धि व उन्नति करना श्रेष्ठ माना जाता था।

● वाणिज्य – व्यवसाय में सबको सुख पहुंचाने का ध्येय तथा ईमानदारी का पूरा ध्यान रखा जाता था।

● नवागन्तुकों , किसी कारण से आर्थिक स्थिति से हीन हो जाने वालों, वयस्क होने पर पृथक होकर नये सिरे से जीवन – यात्रा प्रारम्भ करने वालों तथा नये व्यवसाय चलाने वालों को प्रत्येक घर से एक सिक्का तथा एक ईंट देकर सबके समान स्तर पर लाने की अनोखी व उदार परम्परा प्रचलित थी।

● प्रत्येक नागरिक को आदेश थे कि वह अपनी आय को चार भागों में विभक्त कर पहला भाग जीव– कल्याण तथा समाज के हित में लगाये, दूसरा भाग व्यवसाय, कृषि आदि में लगाये, तीसरा भाग गृहस्थी की व्यवस्था के लिये व्यय करे व चौथा भाग भविष्य के लिये संचित करे।

इस प्रकार सभी प्रकार से एक सम्पूर्ण समाजवादी साम्राज्य की स्थापना करके उन्होनें विश्व के समक्ष एक नया आदर्श प्रस्तुत किया तथा समाजवादी व्यवस्था की नींव रखी । इसी नये तथा महान कार्य का सूत्रपात करने के कारण महाराज अग्रसेन श्री विष्णु अग्रसेन के नाम से विभूषित किये गये । इनकी सन्तति अग्र, आग्रेय तथा अग्रवाल नाम से विख्यात हुई।

गणों की स्थापना

वैश्यकुल–भूषण महाराज अग्रसेन ने अपने बाहुबल, बुद्धि –चातुर्य एवं कौशल से वैश्यों का एक महान साम्राज्य स्थापित कर दिया। राजा –महाराजा बनने का क्षत्रियों का एकाधिकार समाप्त कर दिया। ठीक क्षत्रियों की नाक के नीचे अपने भुजबल व संगठित वैश्यों के सहयोग से सबल समृद्ध आग्रेय राज्य का गठन कर स्वयं महाराज की उपाधि ग्रहण की । चक्रवती सम्राट के समस्त चिन्ह धारण किये, जिसे तत्कालीन राजाओं, सम्राटों तथा ब्राह्मणवर्ग सभी ने मान्यता दी। विश्व में यह अपनी तरह का सर्व – प्रथम तथा अनूठा उदाहरण था। उस समय से पूर्व वैश्यों को शक्तिहीन, दुर्बल तथा क्षीण माना जाता था। ब्राह्मणो तथा क्षत्रियों के मुकाबले उन्हें हेय समझा जाता था। सामाजिक एवं राजनैतिक अभियानों आदि में उनकी भी शूद्रों की भांति अवहेलना की जाती थी, परन्तु अग्रकुल शिरोमणि , वैश्यवंश– भानु श्री अग्रसेन ने इस मान्यता को समाप्त करा वैश्यों की प्रतिष्ठा व सम्मान को बढ़ाया क्षत्रियों एवं ब्राह्मणों के समान ही इस वर्ग की भी समाज में मान– प्रतिष्ठा स्थापित हो गई।

स्वतंत्र राज्य आग्रेय तथा उनकी राजधानी अग्रोदक की प्रशस्ति दिन–दिन संसार में फैलने लगी। महाराज अग्रसेन की यश–गाथाएं विश्व के कोने– कोने में जन– जन के मुहं पर गाई जाने लगी। विश्व में अग्रसेन महारनता व श्रेष्ठता के आदर्श उदाहरण बन गये। तत्कालीन ब्राह्मणों, ऋषियों व ज्ञानियों ने उनकी महानता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। वे ही विद्वज्जन जो केवल क्षत्रियो की गुणगाथाओं के पृष्ठ ही रंगने में लगे रहते थे, महाराज अग्रसेन की प्रशस्तियां लिखने और गाने लगे। उन्होनें अग्रसेन को श्री विष्णु अग्रसेन के नाम से विभूषित किया। शनै–शनै महाराज अग्रसेन का तेज देदीप्यमान सूर्य की तरह जगत में प्रखर होकर चमकने लगा।

महाराज अग्रसेन ने अपनी शक्ति व सूझ–बूझ से पृथ्वी को जीत कर अपना साम्राज्य बढाया । कई बड़े–बड़े राजा– महाराजाओं को युद्ध में परास्त

कर उनसे संधियां की। देवताओं के राजा इन्द्र को भी दो बार घनघोर युद्ध में नाको चने चबवा दिये। आखिर उसने महाराज से क्षमा मांगी व उनसे संधि की। उसने अपने दरबार की एक श्रेष्ठ अप्सरा मधुशालिनी उन्हें भेंट मे दी। क्षत्रिय –कुल–संहारक भगवान परशुराम से भी लगातार चौदह दिन तक युद्ध किया तथा हार नही मानी। परशुराम ही लड़ते –लड़ते थक गये तथा उन्हें शाप देकर चले गये। मां लक्ष्मी की कृपा से इस शाप से उन्हें मुक्ति मिली।

उन्होंने महालक्ष्मी माता को अपनी कुलदेवी के रूप में प्रतिष्ठित किया, जिससे राज्य निरन्तर समृद्धिशाली बना रहा। साम, दाम, दण्ड, भेद की नीतियों से दूर–दूर तक अपने राज्य का विस्तार किया। बलशाली तथा सम्पन्न राज्यों से संधियां कर उन्हें अपना हितैषी बनाया। इसी परम्परा में उन्होनें अपने अठारह विवाह किये, जिससे अठारह बड़े व समृद्धिशाली राज्य उनके संबंधी होकर उनके मित्र बन गये। इससे इनकी शक्ति अपरिमित हो गई। महाराज के अठारह पुत्र तथा अठारह पुत्रियां हुई। उनके भी संबंध तत्कालीन शक्तिशाली राजवंशो के साथ कर आग्रेय गण की शक्ति मे निरंतर वृद्धि की।

उस समय की परम्परा के अनुसार राजा की प्रतिष्ठा यज्ञ कराने में ही निहित थी। महाराज अग्रसेन ने अठारह अश्वमेध यज्ञ कराकर अपार ख्याति अर्जित की। इस प्रकार उन्होंने अठारह वार स्वयं का सम्पूर्ण पृथ्वी का एक –छत्र सम्राट घोषित कर दिखाया । इस प्रकार की घटना इतिहास में आज तक अद्वितीय है। इन्हीं अठारह यज्ञों के अठारह पुरोहितों तथा अठारह पुत्रों के नाम से आगे चलकर उनके वंश में अठारह गोत्र प्रचलित हुए। अग्रसेन की संताने अग्रवाल कहलाई । आज भी अग्रवालों में अठारह गोत्र प्रचलित है।

अपने साम्राज्य को सुदृढ एवं संगठित बनाये रखने के लिये महाराज ने अठारह गणों की स्थापना की तथा केन्द्रीय शक्ति व सत्ता अग्रोहा में निहित की। उन अठारह गणों के केन्द्र –स्थानों के नाम सम्भवत: निम्नानुसार थे:–

भाटों के गीतों के अनुसार

1. अग्रोदक अग्रोहा	1. हांसी
2. आगर अग्रपुर	2. हिसार
3. दिल्ली इन्द्रप्रस्थ	3. तोशाम
4. गुड़गांव गौड़ग्राम	4. सिरसा
5. मेरठ महाराष्ट्र मयराष्ट्र	5. नारनौल नारिनवल

6. रोहतक रोहिताश्व	6. रोहतक रोहिताश्व
7. हांसी हिसार	7. पानीपत पुण्यपत्तन
8. पानीपत पुण्यपतन	8. दिल्ली इन्द्रप्रस्थ
9. करनाल	9. जींद जींदसपोरम
10. कोटकांगड़ा नगरकोट	10. कैथल
11. लाहौर लक्को	11. मेरठ महाराष्ट्र मयराष्ट्र
12. मण्डी	12. सहारनपुर
13. बिलासपुर	13. जगाधरी
14. गढवाल	14. विधिनगर
15. जींदसपोरम	15. नाभा
16. नाभा	16. अमृतसर
17. नारनौल नारिनवल	17. अलवर
18. अग्रश्रेणी	18. उदयपुर

इस प्रकार महाराज अग्रसेन ने एक सुदृढ़ सुसंगठित और सुव्यवस्थित साम्राज्य की स्थापना की। उस समय की प्रचलित कई मान्यताओं और परम्पराओं को चुनौती देकर बदला, नये सिरे से नई सामाजिक मान्यताएं स्थापित कीं, नयी राज्य व्यवस्था का प्रतिपादन किया, संघर्षमय जीवन में विजयी होकर अपार मान–प्रतिष्ठा अर्जित की तथा सुख–पूर्वक 108 वर्षों तक राज्य किया।

एक दिन महाराजा जब अति वृद्ध हो गये तो पूजा के समय मां लक्ष्मी ने प्रकट होकर आदेश दिया– 'राजन्! शासन और समाज के प्रति तुम्हारा दायित्व पूरा हुआ। तुमने अपने कर्तव्यों का पूर्ण निर्वाह लगन तथा निष्ठा से किया है। इससे इस लोक और परलोक दोनों में तुम्हारी ख्याति बढ़ी है। अब तुम्हारा सांसारिक धर्म–पालन का समय समाप्त हुआ। राजन! पुत्र को राज्य सौंपकर अब तुम स्वधर्म का पालन करो तथा आत्मकल्याण की जुगत करो।'

मां का आदेश सुनते ही महाराजा ने तत्काल सांसारिक धर्म का त्याग कर दिया। वैशाख शुक्ला पूर्णिमा के दिन अपने पुत्र विभू को विधिवत् राज्य का भार सौंपकर स्वयं वानप्रस्थ को प्रस्थान कर गये। फिर संन्यासी बनकर पंच–गोदावरी से ब्रह्मसूर स्थान पर गये तथा ईहलोक की चिन्ता त्याग परलोक के लिये तपस्या में लीन हो गये।

सिंहनी का सपूत

वैश्य–समाज के महापुरुष और अग्रवाल जाति के पितामह प्रात: स्मरणीय महाराज अग्रसेन का जन्म द्वापर के अन्तिम चरण में महाकलियुग प्रारम्भ होने से लगभग 85 वर्ष पूर्व माना गया है। मार्गशीर्ष कृष्ण पंचमी को प्रतापनगर में श्री देवल वल्लभ के घर उनका जन्म हुआ था। उन्होंने अपने बल, बुद्धि और नीति के सहारे अपनी सबल सेना का पुनर्गठन कर एक प्रबल संगठन बनाया तथा एक नये साम्राज्य की स्थापना कर डाली। धीरे–धीरे उसका विस्तार चारों दिशाओं में होने लगा। शीघ्र ही उनके नाम का डंका सारे भारत देश में बजने लगा। आसपास के छोटे–मोटे राजागण प्रभावित होकर स्वत: ही उनकी शरण में आने लगे अथवा पराजित होकर अधीन होने लगे। इससे दूसरे बड़े राजा–महाराजा अग्रसेन से ईर्ष्या करने लगे। इस प्रकार राज्य के विस्तार के साथ–साथ उनके शत्रुओं की संख्या भी बढ़ने लगी।

महाराज अग्रसेन स्वयं महावीर एवं पराक्रमी थे। उन्होंने अपनी स्वयं की एक बड़ी मजबूत सेना का गठन कर लिया था। परंतु समय की गंभीरता तथा नाजुक स्थिति को भी वे पहचानते थे। वे अत्यन्त ही कुशल राजनीतिज्ञ व दूरदर्शी थे। उन्होंने अनुभव किया कि उनकी वर्तमान राजधानी ऐसे स्थान पर बसी है, जो बाहरी आक्रमणों से सर्वथा असुरक्षित है। वे इस तथ्य से भली–भांति परिचित थे कि मनुष्य की ज्यों–ज्यों ख्याति बढ़ती है, त्यों–त्यों उसके गुप्त शत्रुओं की संख्या में भी वृद्धि होती जाती है। वे अपनी स्थिति को समझ रहे थे। दूर–दूर तक फैली अपनी प्रशस्ति एवं उसके कारण अन्य राजाओं के हृदय में उत्पन्न हुए क्षोभ तथा वैमनस्य को वे भांप रहे थे। किसी भी समय कोई भी शक्तिशाली राजा उन पर आक्रमण करने को उद्यत हो सकता था। ऐसी स्थिति में इस असुरक्षित राजधानी का क्या परिणाम होगा। प्रजा की क्या होगी। महानता के धनी प्रजावत्सल महाराज अग्रसेन यह कदापि सहन नहीं कर सकते थे कि उनके प्रजाजनों को कोई कष्ट हो, उनके रहते उनकी प्रजा कोई तनिक भी सताये। उन्होंने तो उस

समय के राजाओं की लीक से हटकर अपनी प्रजा की सुख–सुविधाओं के लिये अनेक जन–हितकारी नियम व कानून बनाये थे और एक आदर्श तथा अनुकरणीय राज्य व शासन–वरूवस्था की स्थापना की थी।

उनके राज्य में प्राणी–मात्र सुखी था। जन–सामान्य अति प्रसन्न तथा सभी सुख–सुविधओं से भरपूर जीवन यापन करता था। निर्भय, निशंक व निश्चिंत होकर सभी नागरिक अपने सामाजिक, आर्थिक तथा राजनयिक उत्थान में अग्रसर हो रहे थे। सभी ओर भरपूर समृद्धि और शांति थी। ऐसी थी महाराज अग्रसेन की आदर्श शासन–व्यवस्था।

महाराज अग्रसेन ने अपने राज्य में व्यापारियों, व्यवसायियों, कृषकों, विद्वानों, सैनिकों एवं अन्य समस्त प्रकार के उद्योगकर्मियों आदि के लिये उनकी योग्यता, क्षमता एवं कार्य के अनुसार साधन, सहयोग व पुरस्कार आदि राज्यकोष से उपलब्ध कराने की नूतन परम्परा का श्रीगणेश किया था। परस्पर भाईचारे तथा कौटुम्बिक सौहार्द की भावना जन–जन में पैदा की थी। ऊंच–नीच, छोटे–बड़े की पुरानी मान्यता को समाप्त कर राज्य–भर में सभी प्रजाजनों को एक समान स्तर पर अधिकार प्रदान कर विश्व में सर्वप्रथम समाजवाद की विचारधारा को मूर्त रूप में प्रतिष्ठित किया था।

ऐसे थे महान् व उदार–हृदय महाराज अग्रसेन। वे भला अपनी प्रजा को कभी युद्ध तथा अराजकता की शिकार बनते देख सकते थे? नहीं। इसलिये वे सदा चिंतित रहे थे। नित्य नई राजधानी बनाने के लिये अत्यन्त ही सुरक्षित एवं समुचित स्थान की खोज में लगे रहते थे। वे जहां भी किसी भी कार्य से जाते, उनके साथ नई राजधानी की खोज करने के लिये एक अन्वेषक दल सदा साथ रहता था। ऐसे ही एक बार महाराज दल–बल सहित शिकार खेलने के लिये वन–विहार कर रहे थे। जंगल छानते और आखेट करते कई दिन तक वे वन्य जीवन का आनंद लेते रहे। सदा की भांति, उनके साथ सैनिकों के अतिरिक्त मंत्री–परिषद् के सदस्य भी थे, जो शिकार के साथ–साथ नयी राजधानी के लिये उचित स्थान चयन करने में लगे हुए थे। आखेट और अन्वेषण कार्य एक साथ चल रहे थे।

इसी भांति शिकार खेलते और वन में विचरण करते वे सब एक दिन एक अत्यन्त ही घनघोर जंगल में जा पहुंचे। महाराज अग्रसेन हाथी पर सवार सबसे आगे–आगे चल रहे थे। मंत्री परिषद् की सदस्यगण उस स्थान की भौगोलिक स्थिति से कुछ प्रभावित होकर राजधानी की उपयुक्तता के लिये मन ही मन में

विचार और मनन करने लगे थे। तभी महाराज की दृष्टि एक झाड़ी की ओट में छिपी सिंहनी पर पड़ी, जो लाल-लाल नेत्रों से उनकी ही ओर देख रह थी। अंगारे से लाल-लाल आंखें झाड़ी की झुरमुट में से चमक रही थीं। बिना विलम्ब किये महाराज ने तत्काल शर-संधान कर सिंहनी पर वार कर दिया। निशाना सही था। भयंकर दहाड़ के साथ चीत्कार करती सिंहनी छटपटाने लगी।

छटपटाती सिंहनी ने जो गर्भवती थी, उसी समय एक नन्हे सिंह को जन्म दिया। नवजात सिंह शावक ने गर्भ से बाहर आते ही एक ऊंची उछाल मारी और सबको आश्चर्यचकित करते हुए महाराज के हाथी के सिर पर गंभीर पग प्रहार कर स्वयं धराशायी हो गया। मां और पुत्र दोनों ने ही इस प्रकार प्राण त्याग दिये। किन्तु इस अनोखी घटना ने सबको स्तम्भित कर दिया। सभी मुक्त कण्ठ से सिंहनी तथा उसके शिशु के अप्रत्याशित अद्‌भुत साहस की प्रशंसा करने लगे। महाराज अग्रसेन तो इस घटना से बहुत ही प्रभावित हुए। वे कहने लगे यह भूमि ही वीर-प्रसूता है। जिस धरा पर जन्म लेते ही प्राणी अपने कुलघाती व शत्रु को पहचानने तथा उससे प्रतिशोध लेने की उत्कण्ठा और क्षमता रखता है, उस धरती पर निवास करने वाला मनुष्य साहसी, वीर व पराक्रमी तो होगा ही, अपनी मातृभूमि के प्रति भी सदा सजग एवं समर्पित रहेगा, इसमें संदेह नहीं। यही विचार कर उन्होंने मंत्री-परिषद् के सदस्यों से इस स्थान पर अपनी राजधानी बनाने के बारे में विचार करने के लिये कहा।

मंत्री परिषद् के सदस्य तो पहले से ही उस स्थान के प्राकृतिक वैभव तथा भौगोलिक स्थिति से प्रभावित थे। वे सभी नयी राजधानी के लिये उस स्थान की उपयुक्तता पर मन ही मन विचार कर ही रहे थे। इस घटना ने उनके चिंतन पर भी मान्यता की मोहर अंकित कर दी। ऐसे में जब स्वयं महाराज ने भी अपने श्रीमुख से इसी स्थान पर राजधानी के निर्माण के बारे में अपनी राय दे दी तो वे सभी बहुत प्रसन्न हुए। अब तो इस विषय में कोई विचार करना ही शेष नहीं रहा था। तत्काल सबने मिलकर आपसी मन्त्रणा की ओर अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी।

शिकार से लौटकर महाराज ने समस्त मंत्री-परिषद् में भी विधिवत विचार कर अपनी नयी राजधानी के निर्माण की योजना को अंतिम रूप दे दिया। निश्चित स्थान पर तुरंत श्रमिक, कर्मकार, शिल्पी, मिस्त्री व वास्तुकारों की नियुक्ति की गई। जंगल को साफ करा भूमि को समतल बनाया गया। योजनानुसार

निर्माण-कार्य प्रारंभ कर दिया गया। सहस्त्रो श्रमिकों तथा विशेषज्ञों ने मिलकर शीघ्र ही एक भव्य सुंदर सवा लाख घरों व आलीशान राज-प्रसादों वाला अनुपम अभेद्‌य व पूर्ण सुरक्षित नगरकोट बनाकर तैयार कर दिया। मां लक्ष्मी कुलदेवी की विधिवत पूजा-प्रतिष्ठा करके महाराज ने अपनी नयी राजधानी में धूमधाम से प्रवेश किया। स्वयं महाराज अग्रसेन जी के नाम पर ही नयी राजधानी का नाम भी अग्रोहा रखा गया। वैभव, सुरक्षा तथा भव्यता की दृष्टि से अभूतपूर्व महान अग्रोहा। सभी नागरिक अपनी नयी राजधानी के भव्य सौंदर्य और सुरक्षित व्यवस्था आदि से आनंदित और प्रसन्न थे। वे हर्षोल्लासपूर्वक नूतन नगर-प्रवेश-प्रतिष्ठा के उत्सव मनाने में संलग्न हो गये। यज्ञ, हवन, स्तुतियों, नृत्य-गानों तथा आमोद-प्रमोद का वातावरण त्योहार बन गया। यही त्योहार आज तक अग्रवाल-बन्धु श्री अग्रसेन जी महाराज की पावन जयंती के रूप में प्रतिवर्ष आश्विन शुक्ला प्रतिपदा को अत्यन्त उत्साह व धूमधाम से मना रहे हैं।

हरिद्वारात् पश्चिमायां दिशि क्रोश-चतुर्दशे,
गंगा-यमुनयोर्मध्ये पुण्यपुण्यान्तरे शुभे,
चक्रे चाग्रोकनगरं यत्र शक्रो वशं गतः॥

✦ ✦ ✦ **-महालक्ष्मी व्रत कथा**

एक ईंट एक रूपया

महाराज अग्रसेन अपने युग की एक महान विभूति थे। वे एक कुशल राजनीतिज्ञ थे, पराक्रमी योद्धा थे। और प्रजा के हितकारी सहृदय राजा थे। अपनी प्रजा एवं राज्य की सुरक्षा के लिये उन्होंने सुरक्षित अग्रोहा नगर बसाया, सुदृढ़ कोट से घिरा नगर , जिसमें सवा लाख से भी अधिक घरों की बस्ती थी। उनके सबल हाथों में प्रजा सुरक्षित थी। इसीलिए नागरिक निश्चिन्त होकर अपने काम-धन्धे में लगे रहते थे। अग्रोहा पूर्णतः वैश्य राज्य था, व्यापारियों, किसानों, कर्मकारों, शिल्पकारों और उद्योग - धन्धें करने वालों का राज्य ।

वैश्य होते हुए भी महाराज अग्रसेन क्षत्रियों से भी अधिक कुशलता से शासन का संचालन करते थे। राज्य दिनों -दिन फल-फूल रहा था। नये-नये उद्योग धन्धें पनप रहे थे। व्यापार व्यवसाय उत्तरोत्तर उन्नति कर रहे थे। देश-विदेश में मधुर राजनीतिक तथा व्यावसायिक संबंध स्थापित होते जा रहे थे। दशों दिशाओं से धन - वैभव , सुख-सम्पदा उनके राज्य में बरस रहे थे। अग्रोहा दिन

दूनी और रात चौगुनी समृद्धि की ओर बढ़ता ही जा रहा था।

अग्रोहा के वैभव और महाराज अग्रसेन की महानता की चर्चा चारों ओर फैल चुकी थी। अन्य राज्यों में बसे वैश्यगण भी इस राज्य की ओर आकर्षित होने लगे । जो सम्पन्न वैश्य अपने को किसी कारणवश कहीं असुरक्षित समझते थे, वे अग्रोहा में आकर बसने लगे अन्य राज्यों से उपेक्षित तथा विपन्न वैश्य भी आश्रय पाने के लिए यहां आने लगे । वैश्य – नगरी अग्रोहा का विस्तार बढ़ता गया और महाराज अग्रसेन का यश दूर – सुदूर तक फैलता गया।

अग्रोहा में इस प्रकार प्रतिदिन आने वाले वैश्यों के कारण राज्य के सामने उनके पुनर्वास की समस्या खड़ी हो गई। धनवान वैश्यों के संबंध में तो कोई विशेष अड़चन नहीं थी। उनके आवास के लिए भूमि राज्य की ओर से उपलब्ध करा दी गई। सम्पन्न लोग उस पर अपना भवन बनाकर बस गये तथा उद्योग – व्यवसाय में लग गये परंतु निर्धनों की समस्या विकट थी। वे स्वयं विपन्न और असहाय थे। उनके आवास और व्यवसाय का प्रबंध आवश्यक था। ऐसा न करने पर राज्य में अव्यवस्था व अराजकता फैलने का डर था । सहृदय महाराज ऐसे लोगों के राज्य में प्रवेश पर प्रतिबन्ध भी नहीं लगाना चाहते थे। पर दु:खाकातर थे महाराज ! वे ऐसे असहायों को शरण तथा आश्रय देना अपना प्रथम कर्तव्य एवं परम धर्म मानते थे। अत: लोग आते रहे । राज्य –कोष से उन्हें बसाने तथा धन्धें पर लगाने की व्यवस्था की जाती रही । यह क्रम चलता रहा। परन्तु कब तक? आखिर कब तक ? आने वालों की कोई सीमा नही थी। राज्यकोष कोई जादू का पिटारा नहीं था। धीरे –धीरे राज्य –कोष कम होने लगा। राज्य की आर्थिक स्थिति क्षीण होने लगी। मंत्री – परिषद इस स्थिति से चिन्तित थी। राज्य –कोष निरन्तर घट रहा था। स्थिति यहां तक पहुंच गयी थी कि राज्य के आवश्यक कार्यो के लिए भी धन की कमी अनुभव होने लगी। आखिर मंत्री – परिषद ने यह निर्णय ले हि लिया कि बाहरी लोगों को बसाने के लिये राज्य कोष से अब और व्यय नहीं किया जा सकेगा । महाराज को इस निर्णय से बड़ा दु:ख हुआ। असहाय लोगों को सहायता न मिलने से उनका कोमल हृदय व्यथित रहने लगा । राज्य कोष की भी स्थिति दयनीय थी, वे उस पर बलात और अधिक भार डाल भी नहीं सकते थे। वे उदास तथा चिंतित रहने लगे।

महाराज सदा इसी विकट समस्या का समाधान ढूंढने में लगे रहते और रात– दिन वे इसी पर विचार करते रहते थे। विद्वानों –मनिषियों से सलाह

मशविरा करते, परन्तु कोई हल नहीं निकल रहा था। व्यथा और चिंता से उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। एक दिन दुखी मन से ही महाराज नगर की स्थिति देखने के लिए निकल पड़े । घूमते–घूमते वे उधर भी आये जिधर बाहर से आये गरीब वैश्यों का शिविर लगा हुआ था। उनका कष्ट देख महाराज का हृदय द्रवित हो उठा । वे रो पड़ें । उसी समय उन्होंने देखा कि एक परिवार के सदस्य भोजन करने बैठे ही थे। कि उनके यहां पर अतिथि आ गया। घर में और भोजन नहीं था पर अतिथि को भूखा नहीं रखा जा सकता था। समस्या खड़ी हो गई । परन्तु परिवार वालों ने इसका हल सहज ही निकाल लिया। सभी सदस्यों ने अपने – अपने भोजन में से थोड़ा –थोड़ा निकाल कर अतिथि के लिये भोजन की व्यवस्था कर दी । अतिथि की भरपेट सेवा हो गई और परिवार का कोई सदस्य भी भूखा नहीं रहा । महाराज के मस्तिष्क में सहसा बिजली कौंध गई। अंधेरा छंट गया। जगमग प्रकाश से मन द्युतिमान हो उठा । उन्हें अपनी समस्या का हल मिल गया। वे बड़े प्रसन्नचित हो अपने महल में लौट आये।

दूसरे दिन उन्होनें मंत्री – परिषद तथा नगर के गण्यमान्य महाजनों की बैठक बुलाई। उसमें उन्होनें अपने विचार रखे। उन्होनें प्रस्ताव रखा– अग्रोहा के प्रत्येक घर से बाहर से आने वाले प्रत्येक परिवार को एक रूपया और एक ईंट का उपहार दिया जाना चाहिए। इससे हमारे नागरिकों पर कोई विशेष भार नहीं पड़ेगा और बाहर से आने वाला परिवार इस सहायता से सम्पन्न हो जाएगा। इस प्रकार हमारे राज्य में बाहर से आने वालों की समस्या हल हो जाएगी, राज्य में अराजकता भी नहीं फैलेगी , असमानता ऊंच –नीच तथा छोटे–बड़े के विघटनकारी विचार नहीं पनप सकेंगे, भाईचारा बढ़ेगा तथा समाज और देश सदा एकता के मजबूत सूत्र में बंधे रहेंगे।

महाराज का प्रस्ताव तथा छोटा सा भाषण मंत्री – परिषद व संभ्रान्त नागरिकों ने सुना। उन्हें अपने महाराज के विचारों पर गर्व हुआ । समस्या का इतना सरल समाधान पाकर वे सभी हर्षित हो गये। महाराज का प्रस्ताव सभी ने सर्वसम्मति से यथारूप में स्वीकार कर लिया । नागरिकों ने कहा– महाराज, वैसे भी हम नित्य ही अपने इन गरीब भाइयो को कुछ न कुछ तो देते ही हैं परन्तु वह उनके लिए ठोस सहायता नही है। इससे उनका मनोबल तो गिरता ही है, उनमें हीन –भावना भी जागृत होती है। आपके प्रस्ताव से हम अपने इन गरीब भाइयों की स्थाई सहायता करने में सफल हो सकेंगे, इस ठोस मदद से वे भी अपने पांवों

पर आप खड़े हो सकेंगे और हमेशा के लिये वे किसी पर आश्रित नहीं रहेंगे। उनमें नए आत्मविश्वास की जागृति होगी और वे भी हमारी ही तरह साधन–सम्पन्न होकर नए उद्योग–व्यवसाय में लगेंगे तो राज्य कोष में भी वृद्धि करेंगे। इस प्रकार हमारा स्वदेश भी समृद्ध तथा सम्पन्न होगा। महाराज हम आपके इस अनुपम सुझाव के बड़ें आभारी है। हम इसी समय से इस सुझाव को कार्य में परिणत करने में जुट जाते है।

निर्णय हो गया। समस्या के सहज समाधान ने सबको प्रसन्न कर दिया। खुशी–खुशी सभी लोग कार्य में जुट गये। राज्य की ओर से उचित आवासीय भूमि की व्यवस्था कर दी गई। नागरिकों ने आये हुए प्रत्येक परिवार को प्रत्येक घर से एक–एक रूपया तथा एक–एक ईंट इकट्ठे करके दे दिए। सभी विस्थापितों का पुनर्वास हो गया। वे भी सभी सम्पन्न हो गये, अपने निजी व्यवसाय में जुट गये और महाराज अग्रसेन जी की प्रशस्ति के गीत गाने लगे। इसके बाद से अग्रोहा में यह परम्परा चल पड़ी । बाहर से आकर बसने वाले किसी भी परिवार को प्रत्येक घर से एक रूपया व एक ईंट का उपहार मिलता तो अग्रोहा में आते ही कंगाल भी श्रीमान बन जाता और वह उम्र –भर अग्रोहा तथा अग्रसेन के गुण गाता था।

विश्व में समाजवाद का पहला पाठ पढ़ाने वाले ये अग्रसेन महाराज अग्रवालों के आदिपुरूष माने जाते है। उनके नाम से आज से भी प्रतिवर्ष आश्विन शुक्ला प्रथमा को श्री अग्रसेन –जयन्ती देश –भर में बड़ी धूम – धाम से मनाई जाती है।

✦ ✦ ✦

अग्रवाल समाज की राष्ट्रीय पत्रिका

अग्रोहा धाम मासिक

के सदस्य बनें - मूल्य 15/-रू.

5 वर्षीय शुल्क 750 रुपये, वार्षिक शुल्क 200 रुपये

अग्रोहा विकास ट्रस्ट, अग्रोहा धाम 125047

विशेष: सदस्यता की राशि, अग्रोहा विकास ट्रस्ट, अग्रोहाधाम के बैंक स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, अग्रोहा–खाता संख्या:11594692424 के नाम देय होगा। राशि की पर्ची अग्रोहाधाम कार्यालय में भिजवायें।

शूरसेन

महाराज अग्रसेन के छोटे भाई का नाम शूरसेन था। वह भी अपने बड़े भाई की भांति वीर, प्रतापी तथा नीतिकुशल था । शूरसेन ने अपने अग्रज के महाभियान को सफल बनाने में अपना पूरा सहयोग दिया था। आग्रेय गणराज्य की स्थापना, नयी राजधानी अग्रोहा का निर्माण तथा अग्रसेन के महाराज पदासीन होने तक उसने अपने बल – बुद्धि , शौर्य व शक्ति से अग्रसेन का पूरा साथ निभाया था। गण –स्थापना के बाद भी शासन को व्यवस्था देने , राज्य में शांति कायम करने और सत्ता की नींव जमाने में उसने अथक प्रयास किये। शासन – सत्ता की नींव जब मजबूर होकर जम गई, व्यवस्था सामान्य हो गई तथा सर्वत्र शांति छा गई तो शूरसेन के लिये राज्य में कोई कार्य नहीं रह गया। खाली बैठे – बैठे वह तंग आ गया तो उसके मन में अपने आत्म – कल्याण की भावना जागृत हुई। उसने तीर्थाटन करने का विचार किया । अग्रबंधु अग्रसेन जी से अनुमति लेकर वह तीर्थ यात्रा के लिए अग्रोहा से चल पड़ा ।

दस वर्षो तक शूरसेन विभिन्न जंगलो, पर्वतों व नगरों में होता हुआ देश–देशान्तर का भ्रमण करता रहा। अनेकानेक तीर्थ –स्थानों में जाकर उसने प्रभु के दर्शन किये । वह अनगिनत साधु–संन्यासियों के संपर्क में आया, और उनके उपदेशामृत का पान किया। इस प्रकार धर्माचरण करता, ऋषि–मुनियों से ज्ञानार्जन करता, नये– नये देश व स्थान देखता और प्राकृतिक सुषमाओं का आनन्द लेता वह वापस स्वदेश लौट रहा था तो उसने कुछ दिन के लिए मथुरा में अपना पड़ाव डाला ।

मथुरा में उस समय राजा उरू का शासन था। वह अपने मन्त्रियों व सचिवों की अयोग्यता एवं अकर्मण्यता से परेशान था। राज्य –व्यवस्था अस्त–व्यस्त थी । जनता में अराजकता तथा अशान्ति फैली हुई थी। निरन्तर बाहरी आक्रमणों के कारण सीमान्त प्रदेश त्रस्त था। राज्य व प्रजाजन सभी श्री–सम्पदा एवं बल से हीन हो रहे थे। जन – सामान्य की स्थिति तो अति भंयकर थी ही, राजघराने की दशा भी कम शोचनीय नहीं थी। अव्यवस्था व अर्थाभाव के कारण

राज्य के आवास – गृह गिर रहे थे। सभा –भवन ढह रहा था। ऐसी दयनीय दशा देख शूरसेन को अत्यन्त आश्यर्च हुआ । उसने राजा उरू से इस संबंध में विचार–विमर्श करने का निर्णय किया।

मथुरा के नृपति को जब शूरसेन के अपने राज्य में आकर प्रवास करने के समाचार मिले तो वह बड़ा हर्षित हुआ। उसने उन्हें राजकीय अतिथि बनकर रहने का निमन्त्रण दिया। अत्यन्त प्रेम, आदर–सत्कार तथा उत्साह से उनका स्वागत किया और उन्हें सम्पूर्ण राजकीय सम्मान प्रदान किया।

एक दिन जब दोनों सम्मानित मित्र निश्चिन्तता के क्षणों में बैठे वार्तालाप कर रहे थे तो शूरसेन ने राजा उरू से पूछ ही लिया –'' राजन! मैनें देवभूमि भारत के सभी तीर्थो का भ्रमण किया है। जहां भी मैं गया, मैंने देखा कि हमारे समस्त तीर्थ –स्थान अत्यन्त मनोहर तथा अलौकिक वैभव से परिपूर्ण हैं। परन्तु जब मथुरा–नगरी मे आया तो यहां की दुर्दशा देख कर मेरे हृदय को बड़ी ठेस लगी । यहां तो अशांति और अराजकता फैली हुई है। जनता गरीब, दीन और हीन है। व्यवस्था के नाम पर राज्य की ओर से कुछ भी नही हो रहा है। इस सबका क्या कारण है ? क्या कोई देवी प्रकोप है, अथवा किसी विदेशी आक्रमण से आप त्रस्त है ? यहां का वैभव क्यों नष्टप्राय हो गया है ? मुझे विस्तार –पूर्वक बताइए। आप विश्वास कीजिए, यदि मैं अथवा मेरे बड़े भ्राता महाराज अग्रसेन इस तीर्थ के पुनरूद्धार के लिए कुछ भी कर सकने योग्य हुए तो उसमें पग पीछे नहीं धरेंगे।''

राजा उरू ने कहा –महाभाग मेरे राज्य पर किसी देव का कोई कोप नहीं है। मेरी ही शक्ति और बाहुबल क्षीण हो गये है। आप जो कुछ कह रहे है, सब सत्य है। मेरे राज्य की स्थिति मुझसे छिपी नहीं है। प्रजा की दीन –हीन दशा से मैं स्वयं दु:खी हूं परन्तु मैं स्वयं अवश हूं । मेरे सभी मंत्री , सचिव तथा कर्मचारी अयोग्य एवं कामचोर है। अकर्मण्य सेना व सेनाध्यक्ष मुंह छिपा कर घरों मे घुस गए है। अर्थ –व्यवस्था और कानून – व्यवस्था समाप्त प्राय हो चुकी है। भीतरी एवं बाहरी दोनों ही मामलों में राज्य की स्थिति खोखली हो गई है। मेरी भुजाएं अब निर्बल हो चुकी है। इनमें पहले सी शक्ति व बल अब नहीं रहा है। अत: मैं स्वयं कुछ भी कर पाने में असमर्थ हूं। अन्य कोई योग्य व्यक्ति मुझे राज्य –भर में नहीं दीखता जो इस विकट स्थिति से हमें उबार सकें। यदि आप अपने बल, बुद्धि व शक्ति का सम्बल प्रदान कर दें, तो इस राज्य का काया पलट हो जाएगा। मेरा निवेदन है कि आप यहां की सत्ता की बागडोर अपने हाथ में लेकर शासन सम्भाल लीजिए और प्रजा के दु:ख दूर कीजिए।

शूरसेन पहिले तो इस अप्रत्याशित प्रस्ताव से स्तम्भित हुआ, परन्तु बाद में स्थिति के नाजुक दौर को देख – समझ कर उसने राजा उरू की बात मान ली। अपने बड़े भाई महाराज अग्रसेन से सलाह कर उसने मथुरा के शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली।

अग्रोहा से आवश्यक आर्थिक, राजनैतिक व सैनिक सहायता मंगा ली गई। शूरसेन ने तुरन्त अपने हिसाब से राज्य व्यवस्था में सुधार करने आरम्भ कर दिये। उन्होंने अयोग्य, अकर्मण्य और आलसी कर्मचारियों , सचिवों तथा मंत्रियों को पदच्युत कर उनके स्थान पर अन्य कर्मठ तथा सुयोग्य व्यक्तियों को नियुक्त किया राज – महलों , राज्य – सभागृह ,भंडार , आगार, राज–पथ सार्वजनिक, स्थानों आदि की मरम्मत करा कर उन्हें सुव्यवस्थित किया, भिक्षुओं के लिए अन्नक्षेत्र खोले, स्थान –स्थान पर विद्यापीठ खोल कर नन्हें नागरिकों के लिए न्यायाधीशों की नियुक्तियां की , आन्तरिक एवं बाह्य भेदों की जानकारी के लिये सबल, सुविज्ञ गुप्तचर –दल का गठन किया, सेना को नये सिरे से संगठित कर उसे श्रेष्ठतम शस्त्रास्त्रों से सज्जित किया और कृषकों व व्यवसायिकों को उचित प्रोत्साहन तथा पुरस्कार आदि देकर साधन कृषि एवं उन्नत व्यवसाय करने के लिए प्रेरित किया । शीघ्र ही राज्य की आन्तरिक व्यवस्था काबू में आ गई। आम जनता सुखी होकर शान्तिपूर्वक रहने लगी।

अब शूरसेन ने बाह्य आक्रमणों पर ध्यान दिया । सबल सेना का गठन उसने कर ही लिया था। दक्षिणी सीमाओं पर आक्रमणों को रोकने के लिए उसने आक्रामकों पर स्वयं ही आक्रमण कर दिया। अग्रोहा की मदद पीठ पीछे थी ही। कुछ ही दिनों में उसने सभी शत्रुओं को परास्त कर अपने वश में कर लिया । इस प्रकार शूरसेन ने अल्प समय में ही सम्पूर्ण मथुरा – राज्य को आन्तरिक एवं बाह्य सभी प्रकार से सुव्यवस्थित और सुरक्षित कर दिया तथा शासन को सभी तरह से निष्कंटक बना दिया।

मथुरावासियों ने अपने इस उद्धारकर्ता का भारी स्वागत किया। शूरसेन की जय – जयकार होने लगी। कृतज्ञता ज्ञापन के लिये विद्वानों तथा प्रजाजनों ने मिलकर अपने राज्य का नाम भी बदलकर शौरसेन रख दिया।

''विजय के उपलक्ष्य में बड़ी भारी सभा की गई, जिसमें ब्राह्मण तथा अन्य बड़े लोग इकट्ठे हुए । उसने शूरसेन के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के लिए मथुरा का दूसरा नाम शौरसेन रखा ।''

–डॉ. स्वराज्यमणि अग्रवाल

'अग्रसेन, अग्रोहा, अग्रवाल' पृष्ठ 285

संदेह का शाप

भगवान परशुराम ने पृथ्वी को क्षत्रिय – विहीन करने का प्रण किया था। वे अपने फरसे को कन्धे पर उठाये विश्व के कोने– कोने में घूम–घूम कर क्षत्रिय –वंश का नाश कर रहे थे। वे जिधर भी जाते, क्षत्रियों का संहार कर पृथ्वी को उनके भार से मुक्ति दिलाते। चारों और क्षत्रियों में हा–हाकार मच गया। जो वीर थे, वे परशुराम से लड़ कर मरने लगे। डरपोक और कायर छिप –छिपा कर इधर–उधर भागने लगे। कइयों ने नारियों के वस्त्र तथा चूड़ियां पहन कर आत्म–समर्पण किया, तो अनेकों ने क्षत्रिय –वर्ण ही त्याग दिया। इस प्रकार पृथ्वी पर क्षत्रिय –वंश शनैः–शनैः समाप्त होने लगा।

महाराज अग्रसेन वर्ण से वैश्य थे, परन्तु एक राजा थे। नये राज्य के संस्थापक तथा सर्वेसर्वा थे। अपने राज्य की सुरक्षा तथा व्यवस्था का भार उन पर था। अतः वे क्षत्रियों की ही भांति रणनीति, राजनीति , कुटनीति आदि में प्रवीण थे। राज्य में अथवा राज्य के बाहर कभी भ्रमण –हेतु या कार्यवश कहीं जाते तो एक राजा की भांति लाव–लश्कर आदि के साथ जाते और स्वयं भी पूर्णरूपेण सुरक्षा की दृष्टि से सैनिक वेशभूषा में ही रहते थे।

ऐसे ही एक समय महाराज अग्रसेन अपने साथी –सहयोगियों के साथ कहीं से आ रहे थे तो राह में परशुराम से उनका सामना हो गया। पूर्ण सैनिक वेश में अग्रसेन को लाव–लश्कर सहित आते देख उसे क्षत्रिय समझ परशुराम ने युद्ध के लिए ललकार लिया। प्रश्न क्षत्रिय या वैश्य का नहीं था। प्रश्न था ललकार का जवाब देने का, चुनौती को स्वीकारने का। अतः महाराज अग्रसेन ने एक सच्चे वीर की भांति परशुराम की ललकार का जवाब दिया। वे न तो डरे या भयभीत ही हुए तथा न ही उन्होंने कोई क्षमा– याचना ही की। कायर बनकर जीना उन्हें स्वीकार नहीं था। हार मानना उन्होंने सीखा ही नहीं था। फिर चाहे सामने कोई भी क्यों न हो। परशुराम ने हजारों क्षत्रियों का संहार कर दिया था, उन्होंने क्षत्रिय वंश को ही समाप्त कर देने की प्रतिज्ञा की थी, वे बड़े क्रोधी तथा

रणवीर थे और उनसे आज तक कोई नहीं जीत सका था। ये सब बातें सत्य थीं, परन्तु इससे महाराज अग्रसेन विचलित होने वालों में से नहीं थे। उन्हें कोई ललकारे और वे पग पीछे धरें, यह नहीं हो सकता था। वे जीवित रहेंगे तो सम्मान से, नहीं तो लड़कर प्राण दे देंगे और कायर की तरह पीछे नहीं हटेंगे । वे समरांगण में कूद पड़े।

फिर क्या था, दो महान योद्धा आपस में टकरा गये। दोनों ही कुशल रणधीर, वीर और पराक्रमी थे। एक में अपनी प्रतिज्ञा के कारण संहार का विध्वंसक जोश था तो दूसरे में प्रतिष्ठा और आत्म–विश्वास की प्रबल शक्ति। दोंनों ही एक दूसरे से बढ़–चढ़ करे थे। कौन जीते, कौन हारे ? युद्ध चलता रहा, लम्बा और लम्बा। न परशुराम ही मानने वाले थे, न अग्रसेन हारने वाले। न ये रूके और न वे झुके । निर्णय कैसे हो ? जब तक निर्णय न हो, युद्ध भी बन्द कैसे हो ? परशुराम हारे या अग्रसेन हारे, तभी तो युद्ध बन्द हो। परन्तु न तो परशुराम के लिए अग्रसेन को मार पाना संभव हो रहा था और न ही अग्रसेन हार मान रहे थे। ऐसी स्थिति में युद्ध रूक नहीं सकता था। वह चलता रहा, समय बीतता रहा । दिन पर दिन बीते। कहते हैं कि लगातार चौदह दिनों तक दोनों योद्धा आपस में जूझते रहे पर कोई निर्णय नहीं हो पाया।

एक दिन लड़ते– लड़तें ही परशुराम के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ– क्या वह क्षत्रिय है ? मेरे सामने इतने सारे दिन तक कोई क्षत्रिय आज तक नहीं टिक सका है। सभी बलशाली पराक्रमी क्षत्रिय तो मैंने पहिले ही समाप्त कर दियें है। अब भी कोई इतना बलशाली तथा निर्भीक क्षत्रिय बचा रह गया है, यह असम्भव है। हो न हो यह कोई अन्य ही है– किन्नर, नाग, गन्धर्व, वानर या कोई भी अन्य वंशीय हो सकता है, क्षत्रिय कदापि नहीं । शंका का बीज अंकुरित होते ही परशुराम ने तत्काल युद्ध रोक दिया और अग्रसेन को संबोधित कर पूछा–

''हे वीर! तुम कौन हो ? क्षत्रिय तो तुम कदापि नहीं हो सकते। आज किसी भी क्षत्रिय में मेरे समक्ष लड़ने की शक्ति शेष नहीं रही है। फिर इतने दिन तक तो मेरा मुकाबला कोई विरला ही कर सकता है। इससे तुम मुझे सत्य बात बताओं कि तुम क्षत्रिय नहीं तो कौन हो ?''

अग्रसेन ने कहा– ''विप्रवर, मैं नहीं जानता कि आपने क्या समझ कर तथा क्यों मुझे युद्ध के लिए ललकारा। लेकिन क्योंकि आपने मुझे बिना कोई कारण बताये युद्ध की चुनौती दी, तो मैंने उसे सच्चे वीर की भांति स्वीकार किया। कारण पूछने का स्वभाव वीरों का नहीं होता। आप ही ने युद्ध छेड़ा और

आप ही ने उसे रोका है। क्यों ? मैं नहीं जानता हूं तथा न जानना चाहता हूं। आप यदि युद्ध से थक गये हैं तो विश्राम कीजिए । अथवा निश्चिन्त होकर वापस लौट जाइये । मैं अपनी ओर से आप पर कोई प्रहार नहीं करूंगा। वीर होने के नाते आपकी ललकार का जवाब जरूर दिया है, परन्तु आप जाति और कुल से ब्राह्मण हैं, इसलिये मैं शस्त्र चलाकर आपका कोई अहित नहीं करूंगा । मैं कौन हूं? क्षत्रिय हूं अथवा अन्य कोई हूं, आपसे इतने दिनों तक कैसे लड़ सका , ये सब बातें आप क्यों पूछ रहें है ? इससे इस युद्ध का क्या प्रयोजन है ? आप ही जाने। वीर लोग ऐसी बातें नहीं पूछा करते। फिर भी जब आपने पूछा है तो मै, क्योंकि ब्राह्मणों का आदर करता हूं इसलिए बताता हूं कि मैं क्षत्रिय नहीं हूं । मैं वैश्य – राज्य आग्रेय का राजा अग्रसेन हूं। आपको नमस्कार करता हूं।

परशुराम को यह सुनकर अत्यन्त ही आश्चर्य हुआ। एक वैश्य और इतना पराक्रमी और बलशाली हो सकता है! असम्भव !उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। बोले – क्या तुम सत्य कह रहे हो? क्या वास्तव में तुम वैश्य हो?''

''महाराज! असत्य– भाषण करना अग्रसेन के स्वभाव में नहीं है। धोखा देना और असत्य कहना दोनों ही मेरे लिए पाप है। आप मानें या न मानें मैं वैश्यकुल– नरेश अग्रसेन ही हूं।''

''आश्चर्य ! घोर आश्चर्य ! तुम वैश्य हो ! और तुमने मुझे पहिचान कर भी मुझसे युद्ध किया ! तुम जानते हो मैंने क्षत्रियो का संहार करने का व्रत लिया है। इसलिए केवल उन्हीं पर हाथ उठाता हूं , फिर भी तुमने मुझे पहले नहीं बताया कि तुम क्षत्रिय नहीं हो। एक क्षत्रिय की ही तरह तुमने मुझसे युद्ध किया है। मुझे इस बात में अब भी संदेह है कि तुम वैश्य हो। परन्तु क्योंकि तुमने अपने मुंह से स्वयं को वैश्यकुल का कहा हैं, अत: अब मैं तुम्हारा संहार नहीं करूंगा । मेरी प्रतिज्ञा केवल क्षत्रियों का संहार करने की ही है। किन्तु तुमने स्वयं को वैश्य बताकर मुझसे कपट किया है। अत: मैं तुमको शाप देता हूं कि तुम यदि वास्तव में वैश्य नहीं हो, अन्य कोई भी हो, तो तुम्हारी वंश–वृद्धि नहीं होगी।''

परशुराम इतना कह कर लौट गये , परन्तु महाराज अग्रसेन किं कर्तव्य विमूढ़ से खड़े रह गये। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि उन्होंने सही बात कह कर भी कैसे छल–कपट किया है। यह शाप कैसा है। वे वैश्य हैं तथा वैश्य ही स्वयं को बतलाते है, फिर कैसा धोखा! वे बड़े असमंजस की स्थिति में अपने राज्य में लौट आये। बहुत विचार किया, परन्तु उनकी कुछ समझ में नहीं

आया। इस अजीब शाप का क्या मतलब है तथा इसका निवारण कैसे हो सकता है ? मां लक्ष्मी ही इसका समाधान कर सकती है। अग्रसेन ने मां की आराधना कर उसे प्रसन्न किया। मां ने दर्शन दिये तो सारी वस्तु –स्थिति उनके सामने रख दी। कहने लगे– ''मां, यह सब क्या है ? मैंने तो वीर की तरह परशुराम की ललकार का जवाब दिया और उन्होंने ही गलत समझ कर मुझे युद्ध के लिए ललकारा तो मेरा इसमें कैसा दोष है, मैंने उन्हें कैसे धोखा दिया है ? मेरी समझ में नहीं आता मां ! यह कैसा शाप है ? क्या वास्तव में मेरा कोई दोष है ? क्या मेरे कोई संतान नहीं होगी ? क्या मेरी वंशवृद्धि रूक जायेगी ? मां ! मुझे इस मुसीबत से उबारो। मां मेरा समाधान करो'

मां ने कहा – ''पुत्र शान्त होओ। तुम चिंता न करो। न तो तुमने परशुराम से कोई छल किया है तथा न ही उन्होंने कोई गलती की है। पशुराम ने तुम्हें तुम्हारे वेश के कारण ललकारा। तुम्हारें द्वारा तुरन्त चुनौती स्वीकार कर लेने से तथा लगातार युद्ध करते रहने के कारण ही उन्होंने तुम्हें वैश्य मानने से इन्कार कर दिया। इसी संदेह के कारण उन्होंने तुम्हें शाप दिया है। पुत्र , तुम तो जाति, कुल तथा धर्म सब प्रकार से वैश्य ही हो। परशुराम का शाप तो वैश्य न होने पर वंश – वृद्धि रूक जाने का है। अत: यह शाप तुम्हें प्रभावित नहीं करेगा। तुम निश्चिन्त होकर अपने कर्त्तव्यों का पालन तथा गृहस्थ –धर्म का निर्वहन करो। तुम्हारे संतान होगी और तुम्हारी सारी मनोकामनाएं पूर्ण होंगी । तथास्तु।''

इसके पश्चात महाराज ने 108 वर्षो तक सुख –पूर्वक राज्य किया। उनके अठारह पुत्र हुए । उन्हीं अठारह पुत्रों की संताने अठारह गोत्र वाले अग्रवाल– समाज के नाम से विख्यात हुई।

वदि मंगसरि शनि पंचमी, त्रेता प्रथमचरण।
अग्रसेन उत्पन्न भये, कह भाट शिवकरण।

– भाट शिवकर्ण

इन्द्र को अभय

महाराजा अग्रसेन ने अपनी नयी राजधानी के रूप में अग्रोहा नगर बसाया। यह सभी प्रकार से सुंदर और समृद्ध था। चारों ओर से मजबूत परकोटे से घिरा हुआ था। नगर में गलियों, चौराहों, सड़कों के दोनों ओर भव्य महलों की पंक्तियां खड़ी थीं। मंदिरों, तालाबों और सुंदर उद्यानों की भरमार थी। भांति-भांति के दिव्य एवं अनोखे पक्षी दूर-दूर से मंगाकर उद्यानों में रखे गये थे। फल-फूलों से लदे वृक्षों से नगर सदा सुहावना बना रहता था। स्वच्छ, शीतल जल की उपलब्धि के लिये स्थान-स्थान पर कुओं, बावड़ियों तथा छोटे-छोटे सुंदर सरोवरों की व्यवस्था की गई थी। नगर के बीचों-बीच मां लक्ष्मी का अति भव्य मंदिर बना हुआ था। यहां दिन-रात घण्टों, नगाड़ों के साथ पूजा-अर्चना चलती रहती थी। नगर की अनुपम शोभा इन्द्रपुरी को भी मात करती थी।

व्यवस्थित ढंग से बसे इस सुंदर, मनोरम तथा सुरक्षित नगर को जो भी देखता, उसकी व उसके निर्माता की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता था। देश-विदेश के लोग इसे देखने के लिये आते तथा जहां जाते वहीं इसकी तारीफों के पुल बांधते रहते थे। इस प्रकार महाराज की प्रशस्ति दिन-दूनी, रात चौगुनी फैल रही थी। उनकी बढ़ती हुई शक्ति तथा समृद्धि को देखकर देवताओं के राजा इन्द्र को ईर्ष्या होने लगी। वह इस राज्य को अपने अधीन करने के प्रयत्न करने लगा परंतु इसमें असफल ही रहा। खिसिया कर वह अग्रसेन का यश खण्डित करने को उद्यत हुआ। इसके लिये उसने अग्रोहा और अग्रोहा-निवासियों को अपना कोप-भाजन बनाया। येन-केन-प्रकारेण वहां अराजकता फैलाकर उन्हें अनावृष्टि से उन्हें सताने लगा। इन्द्र के इस प्रकार कोप करने से फसलें नष्ट हो गईं। चारों ओर हाहाकार मच गया। अग्रसेन ने सन्धि के लिये इन्द्र को मनाना चाहा, परंतु वह नहीं माना। पराधीनता अग्रसेन ने भी स्वीकार नहीं की।

इन्द्र का कोप बढ़ता ही गया। सारे प्रयत्नों के बावजूद संकट के बादल टल न सके। प्रजा दुखों से छटपटाने लगी तो द्रवित हो महाराज अग्रसेन अपनी

कुल देवी मां भगवती लक्ष्मी को पुकारने लगे। मां के मंदिर में जाकर वे सुख-सम्पदा की देवी श्री लक्ष्मी की आराधना करने लगे। तपस्या में लीन होकर अन्न-जल भी त्याग दिया। महालक्ष्मी माता अग्रसेन की दृढ़ता, साहस व भक्ति से प्रसन्न हो प्रकट हुई।

मां ने कहा- वत्स। मैं प्रसन्न हूं, वर मांगों।

महाराज ने करबद्ध हो प्रार्थना की- मां मुझे अपने लिये कुछ भी नहीं चाहिये। इन्द्र मुझसे रुष्ट होकर मेरी प्रजा को दुख दे रहा है। यदि आप प्रसन्न हैं तो उसे मेरे वश में कर दीजिये।

मां ने तथास्तु कहकर आशीर्वाद दिया। उन्होंने आदेश दिया कि तुम कोलपुर जाकर वहां नागवंश से अपने संबंध स्थापित करो। इससे तुम्हारे कुल व राज्य दोनों की वृद्धि होगी।

मां का आदेश मानकर अग्रसेन ने तत्काल कोलपुर की ओर प्रस्थान कर दिया। वहां नागराजा महीरथ ने उन्हें उचित सम्मान दिया। अपनी पुत्री सुन्दरावती के स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिये उन्हें आमंत्रित किया। महाराज अग्रसेन ने इसे मां लक्ष्मी की कृपा मानकर तत्काल स्वीकार कर लिया।

स्वयंवर का दिन दूर नहीं था। वह शुभ दिन आ गया। सभा मण्डप सजाया गया। दिव्य आसनों पर देश-विदेश के राजा व राजकुमार आकर विरजामान हुए। महाराज अग्रसेन को भी एक ऊंचा आसन दिया गया। मां का स्मरण कर वे अपने आसन पर आकर बैठ गये। समस्त आमंत्रित महानुभाव जब आ गये तो विधिवत स्वयंवर प्रारंभ करने की घोषणा की गई। राजकुमारी सुंदरावती हाथों में वरमाला लिये सभा मण्डप में आई। सभी राजागण उसे ही निहारने लगे। सबल नागराज्य से उनके संबंध बनें, सबकी यही हार्दिक इच्छा थी। सभी मन ही मन चाहते थे कि सुंदरावती उन्हीं का वरण करे। राजाओं के हृदय बल्लियों से उछल रहे थे। निर्णय राजकुमारी को करना था। वह इसके लिये तैयार थी। उसने एक बार सभा मण्डप में बैठे सभी राजाओं तथा राजकुमारों को निहारा, अपने मन में ही कुछ विचार किया और मन्थर गति से चल पड़ी। बिना किसी अन्य राजा के ओर देखे उसने सीधे जाकर अग्रसेन के गले में वरमाला पहना दी।

महाराज अग्रसेन की इच्छा पूरी हुई। महीरथ ने धूमधाम से सुंदरावती का विवाह उनके साथ कर दिया। हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सेना, दास-दासी, स्वर्ण रत्न, आभूषण तथा उत्तम वस्त्र आदि अनेक उपहार दहेज में दिये।

नागवंश से संबंध होते ही अग्रसेन की शक्ति बहुत बढ़ गई। इन्द्र अब डरने लगा। उसे भय होने लगा कि कहीं अग्रसेन नागों की सहायता से उस पर आक्रमण न कर दे। दोनों की सम्मिलित शक्ति के सम्मुख वह टिक नहीं सकेगा। उसे अपना पद जाता दीखने लगा। वह घबराया उसने नारद को बुलाकर अग्रसेन से संधि करा देने के लिये आग्रह किया।

नारदजी ब्रह्मऋषि थे। पृथ्वी पर सब उनका आदर तथा सम्मान करते थे। उनका कहा कोई नहीं टालता था। इसी से इन्द्र ने उन्हीं का आश्रय लिया। देवऋषि नारद इन्द्र को साथ लेकर महाराज अग्रसेन के दरबार में पहुंचे। अग्रसेन ने उठकर उनकी वंदना की। उन्हें बहुत आदर तथा सम्मान दिया। ऊंचे आसन पर बिठाकर उनकी अर्चना की और निवेदन किया कि प्रभो आदेश कीजिये मैं आपकी क्या सेवा करूं?

नादरजी ने प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा- अग्रसेन तुम महान हो। इन्द्र तो जन्म से ही ईर्ष्यालु और स्वार्थी है। यह अपने कुकृत्यों पर अब लज्जित है। तुम इसे क्षमा कर दो।

महाराज ने आदेश का पालन किया। उन्होंने इन्द्र को गले से लगा लिया। उसे अपने बराबर आसन दिया और सन्धि कर ली। इन्द्र इससे और भी लज्जित हुआ। बार-बार अपने पहले के व्यवहार के लिये क्षमा मांगी। मधुशालिनी नामक अप्सरा महाराज को भेंट की तथा फिर क्षमा मांगते हुए अपने लोक को चला गया। इसके पश्चात इन्द्र अग्रोहा पर सदा समय-समय पर अनुग्रह करते रहे। आग्रेय-राज्य निरंतर उन्नति करता रहा।

नारद उवाच

सन्धि कुरु त्वमिन्द्रेण वृथा द्रोहेण भूपते,
तथा कृत्वा स भामध्ये स शक्रम् आनयत् ऋषिः॥ १०१॥
आलिंग्य चाक्षरां दत्त्वा सुन्दरीं मधुशालिनीम्,
अर्हयामास विधिना ययौ स्वर्गं च नारदः॥ ११०॥

श्री महालक्ष्मी-वृत्त-कथा

पितृमुक्ति

नये नगर अग्रोहा के निर्माण तथा अद्‌भुत अनुकरणीय राज्य व्यवस्था के कारण महाराज अग्रसेन की कीर्ति सब ओर फैल रही थी। सुख-समृद्धि और यश उन्हें सब भांति उपलब्ध हो रहा था। किसी बात की कोई कमी उन्हें नहीं थी। फिर भी उनकी आत्मा असंतुष्ट थी। उन्हें एक महान दुख था जो उन्हें हर पल, हर क्षण सालता रहता था। उनके पिता की मुक्ति नहीं हो रही थी। वे प्रेत-योनि में भटक रहे थे। महाराज ने अपनी ओर से उनकी मुक्ति के सारे प्रयत्न कर लिये थे। ब्राह्मणों को भोजन कराया, पिण्डदान किया, धर्म-पुण्य किया, गो-ग्रास दिये, तीर्थाटन किया और सभी प्रकार से धार्मिक कृत्यु किये, किन्तु उनके पिता प्रेत-योनि से मुक्त नहीं हुए। यही चिंता महाराज अग्रसेन को सदा सताती रहती थी।

महाराज अग्रसेन के पिता वल्लभ धर्मात्मा, चरित्रवान तथा निष्ठावान पुरुष थे। उन्हें अपने देश व समाज पर गर्व था। देशवासियों की सुख-समृद्धि से वे सदा प्रसन्न होते थे। परंतु उनके मन में कोई मैल या बुरी भावना नहीं रहती थी।

एक बार की बात है कि वे भ्रमण करते हुए एक नदी के किनारे से गुजर रहे थे। उस नदी में एक सुंदर ब्राह्मण-कन्या स्नान कर रही थी। वल्लभ उस कन्या के सौन्दर्य, शरीर-सौष्ठव और रूप-कान्ति को देखकर प्रभावित हुए। अतीव सुंदरी थी वह कन्या। वल्लभ उसे पुत्रीवत स्नेह, ममत्व ओर निष्कपट भाव से निहारते रहे। यद्यपि उनके मन में किसी प्रकार का कोई मैल या बुरा विचार नहीं था, फिर भी ब्राह्मण-कन्या को उनका इस प्रकार देखना अच्छा नहीं लगा। उसने सोचा- इस वृद्ध वैश्य की मति भ्रष्ट हो गई है। इस उम्र में भी इसके मन में भारी मैल भरा है। यह आचरण से भ्रष्ट और दुश्चरित्र मालूम होता है। नीच प्रकृति का एवं काम-वासना का कीड़ा ज्ञात होता है। नीच प्रकृति का एवं काम-वासना का कीड़ा ज्ञात होता है। मुझ अकेली लड़की को यहां स्नान करते देख इसके मन में पाप जाग उठा है। इस दुष्ट की नीयत मेरे साथ व्याभिचार करने की है। यह सोचकर वह ब्राह्मण कन्या क्रुद्‌ध हो गई। वल्लभ को व्यभिचारी मान उसने उसे शाप

दिया– रे दुष्ट तूने मुझ ब्राह्मण– कन्या को बुरी नीयत से देखा है। मेरे प्रति तूने अपने मन में पाप को स्थान दिया है, इसीलिए हे पापी मर कर भी तू प्रेत बनकर भटकता रहेगा। तेरी मुक्ति नहीं होगी।

क्रुद्ध ब्राह्मण कन्या के शापयुक्त वचन सुनकर वल्लभ अपनी तन्द्रा से जागे। उन्हें अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ। वे दुखी होकर पश्चाताप करने लगे। ब्राह्मण–कन्या से हाथ जोड़कर उन्होंने क्षमा मांगी। बड़े विनम्र शब्दों में बताया कि मेरा विचार कतई बुरा नहीं था। मैं तो तुम्हें अपनी पुत्री की भांति मानकर देख रहा था। फिर भी मैं अपनी करनी के लिये तुमसे क्षमा मांगता हूं। बेटी। अपना यह कठोर शाप वापस ले लो। मुझे क्षमा कर दो।

ब्राह्मण की बेटी को सही बात मालूम हुई तो उसे भी पछतावा होने लगा। परन्तु वह संकल्प लेकर शाप वचन कह चुकी थी। सत्यवती, शीलवती ब्राह्मणी का शाप टल नहीं सकता। उसने कहा– महाभागा अब तो जो होना था सो हो गया। मेरा शाप तो अटल है, यह टल नहीं सकता। आपको एक बार तो प्रेत योनि में जाना ही होगा। हां, तो जब तुम्हारा पुत्र बड़ा होकर लोहगढ़ जाकर वहां तुम्हारा पिण्डदान करेगा तो तुम्हारी मुक्ति होगी।

ब्राह्मण कन्या ने शाप दिया तथा उससे मुक्ति का उपाय भी बता दिया। वल्लभ भारी मन से अपने घर लौट आये। संकोचवश उन्होंने इस घटना की चर्चा किसी से नहीं की। दिन बीतते गये। वे मर कर प्रेत बने और उनकी आत्मा इधर–उधर भटकने लगी। शाप की बात से अनभिज्ञ महाराज अग्रसेन ने उनकी मुक्ति के लाख प्रयत्न किये, परंतु असफल रहे। वल्लभ की मुक्ति ऐसे न होनी थी, सो न हुई।

श्राद्ध पक्ष आने को था। इस बार महाराज ने फिर नये सिरे से अपने पिता की मुक्ति के लिये व्रत–अनुष्ठान की व्यवस्था की। ब्राह्मणों, पुरोहितों, वेदज्ञों को बुलाकर मन्त्रणा की। उनके बताये अनुसार पितृमुक्ति के लिये सभी प्रकार की व्यवस्था पूरी करने में जुट गये। वे दिन–रात नये आयोजनों के साधन जुटाने और अपनी देख–रेख में उन्हें व्यवस्थित कराने आदि में व्यस्त रहने लगे। पंडितों ने उन्हें सब प्रकार से आश्वस्त करने का पूरा प्रयत्न किया था। इस बार हर हालत में वल्लभ प्रेत–योनि से छुटकारा पा जायेंगे विद्वानों ने यह विश्वास दिलाया था। महाराज यद्यपि उनके बताये अनुसार सारे क्रिया–कर्म करने के लिये तैयार हो गये थे और वे उनकी बताई हुई सम्पूर्ण सामग्री एकत्रित करवा रहे थे परन्तु उनके

हृदय को शान्ति नहीं थी। उनकी आत्मा को विश्वास नहीं हो रहा था। वे उसी तरह चिंतित थे।

एक दिन इसी चिंता में वे देर रात तक जागते रहे। आधी रात के बाद जब थक गये तो पिताश्री को स्मरण करते–करते ही उन्हें झपकी आ गयी। उसी समय प्रेत–योनि में भटकते वल्लभ उधर आ पहुंचे। अपने पुत्र को चिंतित और अर्धनिद्रित अवस्था में देख उसे संबोधित कर कहने लगे– अग्रसेन तुम मेरी मुक्ति के लिये जो कुछ भी यहां कर रहे हो, सब व्यर्थ है। शाप के वशीभूत हुआ मैं यहां आकर अथवा और कहीं पर पिण्डदान ग्रहण नहीं कर सकता। तुम लोहगढ़ जाकर वहां पिण्डदान करो तो मेरी मुक्ति होगी। इतना कहकर वल्लभ–प्रेत वहां से चला गया। लोहगढ़ में जाकर पुत्र के वहां आकर पिण्डदान करने की प्रतीक्षा करने लगा।

प्रेत के वहां से जाते ही अग्रसेन निद्रा से जागे। अर्ध निद्रावस्था में देखे स्वप्न की बात उन्हें स्मरण थी। उन्होंने इस पर विचार किया। अपने कुल–पुरोहित गौड़ से परामर्श किया तथा लोहगढ़ जाकर वहीं पिता का श्राद्ध करने तथा पिण्डदान करने का निर्णय लिया।

अपने पिता के श्राद्ध के दिन महाराज अग्रसेन लोहगढ़ पहुंचे। वहां उन्होंने विधिवत कर्मकाण्ड, स्नानादि कर तर्पण तथा पिता का श्राद्ध किया। स्वप्न में पिता द्वारा बताये अनुसार पिण्डदान किया तो स्वयं वल्लभ ने प्रकट होकर पिण्ड ग्रहण किया। इस प्रकार वे शाप से विमुक्त हो प्रेत–योनि से छुटकारा पा स्वर्गधाम को चले गये। महाराज अग्रसेन ने प्रसन्नतापूर्वक साधू–संन्यासियों और ब्राह्मणों को भोजन कराया व दक्षिणा देकर उन्हें संतुष्ट किया। फिर गरीबों को दान दिया तथा सब कार्य निपटा कर अपने नगर लौट आये। एक बड़ी भारी चिंता से उन्हें मुक्ति मिली। अब निश्चिंत होकर अपना शासन चलाने लगे।

माधवी के लिए

नागवंश अपने समय में एक बहुत ही समृद्ध तथा शक्तिशाली वंश था। भारत देश में नागों के कई छोटे-बड़े राज्य थे। सभी राज्य धन-सम्पदा, ऐश्वर्य-समृद्धि, बल-शक्ति, ज्ञान-विज्ञान हर प्रकार से श्रेष्ठ थे। अन्य राजा लोग इनसे सदा भयभीत रहते थे तथा मित्रता व सन्धि कर लेने की फिकर में लगे रहते थे। ऐसे ही एक यशस्वी नागराज कुमुद उस समय हुए जब महाराज अग्रसेन की ख्याति चारों दिशाओं में सूर्य के प्रकाश की भांति फैल रही थी। नागराज कुमुद की एक सुंदर सुशील और गुणवती कन्या थी, जिसका नाम माधवी था। माधवी सर्वगुण संपन्न थी। खिलते गुलाब सा उसका रूप, पूर्णिमा के चन्द्रमा सा उसका चेहरा तथा स्निग्ध चन्द्रिका सा उसका सौन्दर्य था। कोमल कुसुम की पंखुड़ियों से भी अधिक मुलायम सुकोमल अंग-प्रत्यंग। लावण्यमयी माधवी के आगे स्वर्गलोग की अप्सराओं का रूप भी फीका था। ऐसी थी रूप की रानी नागकुमारी माधवी।

नागराज के यश के साथ-साथ उनकी पुत्री की रूप रश्मियां भी दशों दिशाओं में फैलने लगीं। माधवी के सौन्दर्य तथा गुणों की चर्चा संसार के कोने-कोने में होने लगी। सभी बड़े-बड़े राजा-महाराज उसे देखने आने लगे। माधवी की अनुपम रूप-राशि सभी के हृदयों में बिजली सी गिराती थी। उसके गुणों का जादू सभी के मन-मस्तिष्क पर छा जाता था। सभी उस पर मोहित हो उससे विवाह की लालसा करने लगते थे।

महाराज अग्रसेन के बल, बुद्धि तथा चातुर्य की चर्चाएं उस समय जन-जन के मुंह पर थीं। उनका यश भी चढ़ते रवि की किरणों के समान दशों दिशाओं को आलोकित कर रहा था। माधवी ने भी अग्रसेन के बारे में चर्चाएं सुनी थीं। उनकी वीरता, पौरुष तथा महानता की अनेक गाथाएं दिन-रात उसे मालूम होती रहती थीं। महाराज का चित्र भी उसने देखा था। माधवी को बल, रूप, बुद्धि तथा ख्याति सभी प्रकार से महाराज अग्रसेन ही श्रेष्ठतम लग रहे थे। उसने मन ही मन अपने पति के रूप में उन्हें वरण कर लिया था। उसके पिता

नागराज कुमुद भी अग्रेसन की बढ़ती ख्याति से प्रभावित थे। वे भी उनसे संबंध बढ़ाना चाहते थे। उनकी निगाह में माधवी के लिये अग्रसेन से बढ़कर उपयुक्त वर दूसरा नहीं था। इसलिये वे भी चाहते थे कि अग्रसेन तथा माधवी का विवाह हो जाये। इसके लिये वे अंदर ही अंदर प्रयत्नशील थे। देवताओं का राजा इन्द्र बड़ा ही शक्तिशाली तथा कूटनीतिज्ञ था। उसने भी माधवी को देखा और उसके गुणों को परखा था। वह भी उस पर मोहित था। इन्द्र स्वयं माधवी से विवाह करने के लिये आतुर था। उसने अपना प्रस्ताव नागराज कुमुद के पास भेजा। नागराज कुमुद तो माधवी का विवाह अग्रसेन से करना चाहते थे। उनकी दृष्टि में माधवी के लिये इन्द्र उपयुक्त वर नहीं था। वह सुंदर, वीर तथा एक सबल साम्राज्य का अधिपति तो था, परंतु धूर्त और धोखेबाज था। इसलिये वे उसे पसंद नहीं करते थे। फिर भी इन्द्र से झगड़ा मोल लेना नहीं चाहते थे। अत: उसके प्रस्ताव को स्वीकार करने में टाल-मटोल करने लगे। इन्द्र तो माधवी पर पूरी तरह विमोहित था। वह येन-केन-प्रकारेण माधवी को अपना बनाना चाहता था। अत: उसने माधवी को प्राप्त करने के लिये कुटिल चालें चलनी शुरू कर दीं।

नागराज कुमुद को इससे चिंता होने लगी कि स्वभाव से धूर्त और कपटी इन्द्र कहीं कोई अनिष्टकारी हरकत न कर बैठे। युद्ध अथवा खुली चुनौती से वह इन्द्र से किसी भांति डरने वाला नहीं था। परंतु इन्द्र इतनी नीच प्रकृति का था कि अपने स्वार्थ साधन के लिये चोरी-छिपे व धोखे से भी गंदी से गंदी हरकते कर सकता था। उसकी घृणित तथा दुष्ट प्रकृति की कार्यवाहियों से इतिहास भरा पड़ा है। अत: इससे पहले कि इन्द्र कोई बुरी घटना घटित करे, नागराज ने माधवी का विवाह महाराज अग्रसेन से कर देने की ठान ली। माधवी के मन का उन्होंने पता लगा लिया था। इसलिये अब उनके मन में कोई संकोच भी नहीं रह गया। उन्होंने महाराज अग्रसेन को अपना दूत भेज कर संदेश भेजा तथा पुरोहित के हाथ माधवी का लगन भी भेज दिया।

यशस्वी महाराज अग्रसेन ने भी नागकन्या माधवी के रूप गुणों का बखान सुन लिया था। शक्तिशाली नागवंश से अपने संबंध दृढ़ करने का एक सुनहरा अवसर उन्हें अपने आप मिल रहा था। साथ ही माधवी जैसी रूपवती और गुणवती पत्नी भी मिल रही थी। उन्होंने सहर्ष लगन स्वीकार कर लिया। नागराज कुमुद ने धूमधाम से माधवी का विवाह महाराज अग्रसेन के साथ कर उसे विदा किया। माधवी खुशी-खुशी अपने मनचाहे वर के साथ ससुराल में आ

गई।

इन्द्र माधवी के अग्रसेन के साथ विवाह से क्रुद्ध हो उठा। वह आपे से बाहर हो गया। वह तो किसी तरह छल, बल कपट से ही माधवी को अपने अंत:पुर में लाने के स्वप्न देख रहा था। इस अप्रत्याशित विवाह के कारण उसके स्वप्नों का संसार स्वाह हो गया, आशाओं पर पानी फिर गया, सारी योजनाएं जहां की तहां धरी रह गईं। उसने सोचा- हो न हो इसमें अग्रसेन की ही कोई चाल है। उसी ने कोई कूटनीति खेलकर मेरी प्रिया के साथ अपना विवाह रचा लिया। उसे मजा चखाना चाहिये। यह सोच उसने अग्रसेन को अपना शत्रु मान उस उस पर प्रबल आक्रमण कर दिया।

महाराजा अग्रसेन तो पहले ही सचेत थे। उन्हें इस बात की पूरी आशंका थी कि स्वार्थी और कपटी इन्द्र कुछ भी कर सकता है। उन्होंने अपनी सेना को इन्द्र के समक्ष ला भिड़ा दिया। खूब जमकर युद्ध होने लगा। दोनों ही पक्ष बलशाली थे। मुकाबला बराबरी का था। वर्षों युद्ध होता रहा। न इन्द्र आक्रमण करते थका, न महाराज अग्रसेन ने ही हार मानी। इस लम्बी लड़ाई से देवता व मानव सभी दुखी हो गये। देवलोक की तो सारी व्यवस्था ही अस्त-व्यस्त हो गई। देवगण त्राहि-त्राहि करने लगे। आखिर वे सब भगवान ब्रह्मदेव की शरण में पहुंचे। भगवान की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया तथा इन्द्र ने अपनी नादानी से पृथ्वीलोक के महाराज अग्रसेन से युद्ध छेड़ लिया है। वर्षों बीत गये, युद्ध चल रहा है। अग्रसेन भी कोई कम संपन्न व शक्तिशाली नहीं है। वह कभी हार मानने वाला नहीं है। इधर लम्बी लड़ाई के कारण देवलोक की सारी व्यवस्था ही नष्ट हो गई। चारों ओर अराजकता फैल रही है। सारे साधन स्वाहा हो गये। सुख-सम्पदा युद्ध के दावानल में भस्मीभूत हो चुके हैं। देवलोक विपन्न हो गया है। भगवन। यह युद्ध यदि कुछ दिन और चला तो इन्द्र स्वयं ही हार जायेगा। तब देवलोक की सारी साख मिट्टी में मिल जायेगी। हे प्रभो, आप ही कोई उपाय कीजिये जिससे देवलोक की लाज बचे और युद्ध की विभीषका भी समाप्त हो।

भगवान ब्रह्मदेव देवों की करुण स्थिति जानकर द्रवित हो उठे। उन्होंने देवों को ढांढस बंधाया और स्वयं समरांगण की ओर चल पड़े।

वहां, जहां इन्द्र और अग्रसेन में युद्ध चल रहा था, बड़ा भयंकर दृश्य उपस्थित था। वर्षों के युद्ध ने मानवों और देवों के रक्त से पृथ्वी का रंग ही बदल दिया था। रक्त रंजित भूमि पर दोनों पक्षों के सैनिक अब भी युद्ध में एक-दूसरे के

प्राणों के प्यासे जूझ रहे थे। इन्द्र और अग्रसेन आमने-सामने युद्ध भूमि पर डटे थे। रणभेरियां बज रही थीं। धनुष टंकार गूंज रही थीं। तलवारों की खनखनाहटें तथा गदाओं के टक्राव का भयंकर गर्जन युद्ध भूमि को गुंजायमान कर रहा था। घायल पीड़ितों के आर्तनाद से तथा गिद्धों, श्वानों, सियारों के चीत्कार से वातावरण डरावना बन रहा था। परंतु दोनों पक्ष युद्धोन्मत्त एक-दूसरे का संहार करने में ही लगे थे। ऐसे समय में भगवान ब्रह्मदेव इन्द्र और अग्रसेन के मध्य दिव्य स्वरूप लेकर प्रकट हुए। अकस्मात् भगवान को युद्ध-भूमि में आया देख अग्रसेन शस्त्रास्त्र फेंक कर उनकी ओर दौड़े। इन्द्र भी हतप्रभ से प्रभु की ओर दौड़ पड़े। दोनों ने एक साथ जाकर भगवान के चरणों में नमन किया और सिर झुकाकर खड़े हो गये।

भगवान ने दोनों को युद्ध तत्काल बंद कर देने का आदेश दिया। इन्द्र को उसकी नीचता के लिये भला-बुरा कहा और उसे तुरंत वापस देवलोक लौट जाने का आदेश दिया। अग्रसेन के शौर्य, निर्भीकता तथा महान विचारों के लिये उनकी प्रशंसा की एवं उन्हें अभयदान दिया। आशीर्वाद देकर भगवान ब्रह्मदेव वापस अपने धाम लौट अयगे। इस् पकार नारी के कारण दो महान राज्यों में बंधे वैर का कुपरिणाम शांत हुआ और युद्ध की विभीषिका भी समाप्त हुई। देवताओं तथा मानवों ने इससे राहत की सांस ली। महाराज अग्रसेन भी अपनी सेना को लेकर अपने राज्य में लौट आये तथा बिगड़ी हुई व्यवस्था को सुधारने में जुट गये।

महालक्ष्मी का वरदान

महाराज अग्रसेन ने नागराज कुमुद के निवेदन पर उनकी सुंदरी कन्या माधवी से विवाह कर लिया। इससे इन्द्र उनसे रुष्ट हो गया। इन्द्र स्वयं माधवी पर विमोहित था। वह उससे विवाह करना चाहता था। परिणामत:, इन्द्र ने अग्रसेन के राज्य में वर्षा बन्द कर दी तथा भीषण सैन्यबल के साथ अग्रोहा पर आक्रमण कर दिया। कई वर्षों तक युद्ध चलता रहा परंतु कोई निर्णय नहीं हुआ। आखिर भगवान, ब्रह्मदेव ने मध्यस्थता करके युद्ध बंद कराया।

लगातार कई वर्षों के युद्ध तथा अकाल के कारण अग्रोहा की अर्थव्यवस्था बिगड़ गई थी। देश में धन-धान्य का भयंकर अभाव उत्पन्न हो गया था। सम्पूर्ण देश अराजकता की स्थिति में पहुंचने को था। महाराज अपने समृद्ध तथा संपन्न राष्ट्र की ऐसी दयनीय स्थिति देखकर चिंतित हो उठे। उन्होंने देश को पुन: समृद्ध संपन्न बनाने के लिये प्रयत्न प्रारंभ किये। मंत्री परिषद् की बैठकें की गईं। नाजुक स्थिति पर गंभीर विचार-विमर्श किया। कई महत्वपूर्ण निर्णय लिये। देश भ्रमण करके जनता में नये जोश व उत्साह की जागृति करने के प्रयत्न किये। व्यवसायियों, उद्योगपतियों और कृषकों को नये सिरे से, नये उत्साह से अथक परिश्रम करने व निरंतर कार्य करने के लिये प्रेरित किया। सब कुछ करने पर भी स्थिति नियंत्रण से परे ही रही। राज्य की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। स्थिति विकट तथा विषम हो गई। आर्थिक दृष्टि से कमजोर राष्ट्र कभी भी प्रगति नही कर सकता । उसकी स्वतन्त्रता को भी हर पल खतरा लगा रहता है। कभी भी कोई दूसरा राज्य उसकी कमजोरी का लाभ उठा कर उस पर आक्रमण कर उसे पराधीन कर सकता है। पराधीनता से बढकर दूसरा दु:ख इस संसार में कोई नहीं है। भविष्य के अनिष्ट की आंशका ने महाराज को घोर चिंता में डाल दिया।

अग्रोहा की रीढ की हड्डी टूट चुकी थी। भीतर ही भीतर वह स्वयं टूट कर बिखर रहा था। अब तो कोई दैवी शक्ति ही उसे उबार सकती थी। मानवीय प्रयत्नों के वश में उसे सम्हाल पाना संभव नहीं था । यह सोचकर महाराज ने मां

महालक्ष्मी की आराधना कर उसे प्रसन्न करने का निर्णय लिया। वन में जाकर तपस्या कर मां को मनाने का निश्चय कर लिया। पटरानी माधवी को सत्ता का भार सौंप कर स्वयं तपस्या के लिये निकल पड़े।

उन्होंने नौका द्वारा यमुना नदी पार की। बियावान वन में जाकर निर्जन वन प्रान्त में अपनी धूनी रमाई। कठोर तपस्या में लीन हो गये। अन्न-जल त्याग दिया। दो युग के निरन्तर कठोर तप ने मां लक्ष्मी का हृदय पिघला दिया। निर्जन वन में अपना आलोक बिखेरती मां चंचला प्रकट हुई। प्रसन्न होकर मां ने अग्रसेन को आवाज दी-'' उठो राजन ! नेत्र खोलो । मैं तुम पर प्रसन्न हूं। मांगो, जो चाहो वर मांगो। '' मां का संबोधन सुनकर महाराज ने आंखे खोली। मां लक्ष्मी को साक्षात प्रत्यक्ष देखकर उनके चरणों में लोट गये। बोले'' मां! मेरी प्रजा युद्धों और अकाल की मार से पिड़ित होकर मर रही है। मेरा राज्य श्री संपदा विहिन हो कंगाल हो गया है। मेरे देशवासी भूखों मर रहे है। मां! मुझे अपने लिये कुछ नहीं चाहिए । मां ! कुछ नही चाहिए परन्तु मैं लोगो को भूख से तड़प -तड़प कर मरते हुए नहीं देख सकता । अपनी प्रजा की कंगाली, दीनहीन स्थिति तथा दुखी हालत मुझसे नहीं सही जाती। मां ! मेरी प्रजा के कष्ट दूर करो। दो, मां दो मेरी खाली झोली भर दो मां!'' कहते -कहते द्रवित हो रो पड़े महाराज । दोनों हाथों से मां के चरण पकड़ लिपट गये उनसे ।''मां ! जब तक मेरी प्रजा के सब दु:ख दूर नही हो जायेगें, मैं ये चरण नहीं छोडूगां ।''

महाराज अग्रसेन की प्रजावत्सलता देख मां लक्ष्मी गद्-गद् हो गई । उन्होंने महाराज को अपने हाथों से उठा लिया। बोली-''हे राजन ! तुम यह कठिन व्रत बंद करो । गृहस्थ धर्म सबसे उत्तम है। अपने राज्य में जाकर उसका निर्वहन करो। मैं तुम्हें समस्त वैभव व सिद्धि प्रदान करूंगी । आज से यह पृथ्वी तेरे वंश से पूरित होंगी। सब जाति और वर्णो के कुल के नेता तेरे वंश में उत्पन्न होंगे। आज से यह कुल तेरे नाम से जाना जाएगा। अग्रवंशी प्रजा तीनों लोकों में अग्रगण्य होगी। '' महाराज को अभय देते हुए मां ने फिर कहा-''जब तक अग्रकुल में मेरी पूजा होती रहेगी, यह कुल सदा धन, संपदा, वैभव से संपन्न रहेगा। मैं सदा कुलदेवी के रूप में अग्रवंशियों के घरों में निवास करती रहूंगी। '' इतना कह कर मां अन्तर्धान हो गई।

महाराज अग्रसेन प्रसन्न वदन अपने देश लौट आये। देवी -कृपा से उनके अग्रोहा पहुंचते-पहुंचते परिस्थितियां काफी संभल चुकी थी। महाराज ने

राजधानी में पहुंचते ही समस्त परिजनों तथा प्रजाजनों को मां के वरदान की बात बताई और भगवती लक्ष्मी को विधिवत अपनी कुलदेवी के रूप में प्रतिष्ठित किया। वेदमंत्रों और पूजा –पाठ से मां का अभिषेक किया। प्रजाजनों ने भी महाराज के साथ मां की पूजा की। कुछ ही दिनों में मां के प्रताप से अग्रोहा फिर से धन–धान्य , सुख–सुविधाओं से सम्पन्न होकर समृद्धिशाली हो गया।

आश्रमा: सर्व –वर्णाश्च गृहस्थें हि व्यवस्थिता: ।
कुरू त्वमाज्ञया तुभ्यं दास्यामि सकलार्धिकाम॥
तव वंशे मही सर्वा पूरिता च भविष्यति।
तव वंशे जाति –वर्णेषु कुल–नेता भविष्यसि॥

– श्री महालक्ष्मी –व्रत –कथा

✦ ✦ ✦

ताम्बे का तालाब

हजारों वर्ष पहले की बात है, भारतवर्ष में वैश्यों का एक महान राज्य था। यह राज्य आग्रेय गण कहलाता था। यद्यपि यह राज्य गणराज्य था, तथापि यहां गण –प्रमुख राजा ही होता था। इस राज्य की राजधानी अग्रोहा नगरी थी। महाराज अग्रसेन इस राज्य के संस्थापक थे। उन्होंने ही इसकी राजधानी के नये नगर अग्रोहा को बसाया था। आग्रेय गण अपने समय के सर्वाधिक समृद्ध व सम्पन्न राज्यों में माना जाता था । उसकी राजधानी अग्रोहा उस समय एक आदर्श एवं भव्यतम नगर था।

अग्रोहा गण वैसे तो सर्व प्रकार से सुखी व संपन्न था, उसकी राजधानी विशाल प्रासादों से युक्त संपन्न धनिकों की नगरी थी, वह आकर्षक व सुन्दर थी, तथापि वहां सदैव जल का अभाव बना रहता था। भारी जल –संकट के कारण नागरिक गण अत्यन्त ही दु:खी रहते थे। आस–पास कही भी कोई निरन्तर जल प्रदान करने वाला अक्षय जल स्त्रोत नहीं था। यह समस्या विकट थी।

महाराज अग्रसेन इस स्थिति से दुखी थे। वे नित्य इस समस्या के समाधान के लिये प्रयत्नशील रहते थे। इस समस्या के उचित समाधान के लिए उन्होंने कई विशेषज्ञ कर्मचारियों को जल – स्त्रोंतो का पता लगाने के लिए नियुक्त

कर रखा था। उनकी सलाह पर अनेक स्थानों पर कूओं और बावड़ियों का निर्माण कराया गया था, परन्तु उनसे आवश्यक मात्रा में जल की आपूर्ति नहीं हो पा रही थी। लाख प्रयत्न करने पर भी राज्य– भर में ऐसा कोई प्राकृतिक जल–स्त्रोत नहीं मिल सका जो जल– संकट का पूर्ण विमोचन कर पाता । अत: समस्या यथावत बनी रही।

महाराज अग्रसेन इससे निराश होने वालों में से नही थे। वे बड़े उत्साही तथा दृढ़ निश्चयी थे। उन्होंने निर्णय लिया कि प्राकृतिक जल–स्त्रोत यदि नहीं है तो राज्य में कृत्रिम जल – भण्डार बनाया जाए। उन्होंने तत्काल ही आदेश दिये कि अग्रोहा नगर के पास उचित स्थान देखकर एक अति विशाल तालाब का निर्माण कराया जाए।

जल – संकट एक अहम समस्या थी, अत: तुरन्त ही द्रुत गति से इस पर कार्यवाही की गई। कर्मचारियों और विशेषज्ञों के दल कार्य में जुट गये। विशाल तालाब के निर्माण की योजना को अन्तिम रूप दे दिया गया। उचित स्थान का चयन कर कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। युद्धस्तर पर वह कार्य निरन्तर पूर्णता की ओर तीव्र गति से अग्रसर होने लगा।

कर्मठ कर्मकारों , मुस्तैद सहयोगियों तथा उत्साही आयोजकों ने मिलकर शीघ्र ही कार्य संपन्न कर दिया और एक अति विशाल और आलीशान तालाब बनकर तैयार हो गया। तालाब में चारों ओर से चार नहरे लाकर मिलाई गई थी, जो दूर–दूर से जल लाकर तालाब को भर देती थी।

वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने से पूर्व ही तालाब सब भांति बनकर तैयार हो गया। उचित समय पर वर्षा हुई तो पहली वर्षा से ही बड़ा तालाब किनारे तक पूरा भर गया। अथाह जल से भरा हिलौरें लेता विशाल सरोवर देख महाराज अग्रसेन व प्रजाजन सभी अत्यन्त ही प्रसन्न हो उत्सव मनाने लगे, खुशी में गाने बजाने लगे और मौज मस्ती में झूमने लगे। किन्तु यह मस्ती का मेला अधिक समय तक नहीं रह सका । न जानें क्या हुआ कि जल से लबालब भरे तालाब का पानी एका–एक घटने लगा। देखते ही देखते सारा पानी तालाब की तली में समा गया। भरा –पूरा तालाब कुछ ही देर में खाली हो गया। कीचड़ और मिट्टी तली में शेष रह गये और दु:ख और आश्चर्य से सभी देखते रह गये।

सबके देखते ही देखते विशाल तालाब का समस्त जल धरती के गर्भ में समा गया । यह एक चमत्कार पूर्ण घटना थी। इसकी चर्चा जन–जन के मुहं पर चढ़ गई । जो भी सुनता , यही कहता कि यह देवी प्रकोप है। कहीं कोई न कोई चूक

हो गई है, जिससे देवी –देवता रूष्ट हो गये है और वे तालाब के भरते ही सारा जल सोख लेते है। उन्हें संतुष्ट करने के लिए पूजा और हवन आदि का विधान करना चाहिए। ब्राह्मणों , ऋषियों , पण्डितों आदि ने भी यज्ञ अनुष्ठान कराने की प्रेरणा दी। तालाब के किनारे पर ही अनुष्ठान का भव्य आयोजन किया गया। कुल देवी मां लक्ष्मी की आराधना और जप–तप प्रारम्भ किया गया। यज्ञों में आहुतियां पड़ने लगी, वेदमंत्रों और स्तुतिगानों से गगन गूंज उठा । करूण हृदयों की पुकार मां के कानों तक पहुंची , तो मां ने महाराज अग्रसेन को स्वप्न में दर्शन दिये। उन्होंने कहा– '' अग्रसेन! तुम्हारे तालाब की तली में अदृश्य छिद्र है, जिनसे सारा पानी पाताल लोक में चला जाता है। अत: तुम उसकी तली ऐसी बनवाओं जिससे उसमें दरार न पड़ सकें। फिर यह तालाब कभी खाली नहीं होगा।''

स्वप्न में मां की वाणी सुनकर अग्रसेन जाग पड़े। उन्होंने प्रात:काल होते ही विशेषज्ञों को इस कार्य के लिये पुन: नियुक्त कर दिया । विशेषज्ञों ने बताया– महाराज इस प्रकार की तली तो केवल धातु से ही बन सकती है। यदि इतना तांबा उपलब्ध हो सके तो उसे पिघलाकर तालाब की तली में बिछा दिया जायेगा, जिससें तल में कभी दरार नहीं पड़ सकेगी। महाराज ने कह दिया–'' यह तो कोई विशेष चिंता योग्य बात नहीं है। तुम अपना कार्य प्रारम्भ करो, तुम्हें जितना चाहिये उतना तांबा मिल जायेगा। ''

विशेषज्ञ आदेश पाकर कार्य में जुट गये। महाराज ने तुरन्त सेवको को चारों दिशाओं में दौड़ा दिया। हजारों मन तांबा जहां, जिस भाव मिला , खरीद लिया गया। जितना चाहा, ताम्बा कारीगरों को उपलब्ध करा दिया गया। योजनानुसार तांबे का तल बनाकर विशेषज्ञों ने उससे तालाब की तली को मढ़ दिया। पक्की धातु की तली में छेद होना संभव नहीं था। फिर वर्षा हुई, तालाब भर गया और इस बार वह भरा ही रहा । हर्षोल्लास से जन–जन मगन हो गया। उत्सव–उत्साह पूर्वक पूजा अनुष्ठान कर महाराज ने कुलदेवी मां लक्ष्मी का उस जल से अभिषेक किया और सरोवर सर्व –साधारण के लिए सुलभ करा दिया। मां लक्ष्मी और महाराज अग्रसेन की जय–जयकारों से धरती –अम्बर गुंज उठे। भगवती मां लक्ष्मी की जय। 108 श्री विष्णु अग्रसेन जी महाराज की, जय! जय!! जय!!!

अठारहवां पुत्र

प्राचीन काल में भारत में एक अत्यन्त ही सबल एवं पराक्रमी जाति थी। उस जाति के लोग शक्तिशाली और अजेय थे। उनका राज्य धन–धान्य और सम्पदा से भरा –पूरा समृद्धिशाली था। कोई भी दूसरा राज्य उनकी ओर आंखे उठाकर देखने का साहस नहीं कर सकता था। उनसे मित्रता करने व सन्धि करने के लिए बड़े –बड़े राजा–महाराजा तरसते थे। महाप्रतापी राजा दशानन तब नागलोक के सम्राट थे। उनकी सत्रह पुत्रियां थी। उन्होंने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि वे अपनी समस्त कन्याओं का विवाह एक ही राजा के अलग –अलग पुत्रों से करेगें। अर्थात जितनी कन्याएं उनकी हैं उतने ही पुत्र जिसके होंगे, वहीं सारी कन्याओं का विवाह एक साथ करेंगे। न तो किसी एक ही व्यक्ति के साथ एक से अधिक कन्याओं का विवाह करेंगे उनके लिए अलग–अलग घर देखेंगे।

दशानन की प्रतिज्ञा के अनुसार उसकी कन्याओं के विवाह की शर्ते इस प्रकार बनती हैं–

1. सभी कन्याओं का विवाह एक ही परिवार में करूंगा ।
2. प्रत्येक कन्या के लिए वर अलग–अलग होगा।
3. सभी वर सगे भाई होंगे अर्थात वे सभी एक पिता की सन्तान होंगे।
4. वर–पक्ष उनकी मान और प्रतिष्ठा के अनुरूप राज–घराने का होगा।

बड़ी अनोखी और विकट प्रतिज्ञा थी परन्तु राजा–महाराजाओं को कौन कह सकता था? वे जब जैसा चाहें निर्णय लें, प्रजा व सामन्तों को उसका पालन करना ही होता था।

बड़ी अनोखी और विकट प्रतिज्ञा थी परंतु राजा महराजाओं को कौन क्या कह सकता था? वे जब जैसा चाहें निर्णय लें, प्रजा व सामन्तों को उसका पालन करना ही होता था। क्या मजाल कोई जरा भी चूं तक कर दे। यहां भी ऐसा ही हुआ। कौन दशानन को कौन समझाए कि एक ही घर में एक साथ सत्रह पुत्र मिलना संभव नहीं है।फिर कोई ऐरे–गैरे नत्थू खेरे के घर तो विवाह करना नहीं है। घर तो बराबरी का ही देखना पड़ेगा। किसी की हिम्मत नहीं हुई कि वह कुछ कह सके। निदान, सब लगे दौड़–भाग करने। चारों दिशाओं में गुप्तचर तथा

सन्देश–वाहक भेज दिये गये। किस राजा के सत्रह पुत्र हैं, इसकी खोज होने लगी। आखिर वर्षों के पश्चात एक दूत ने आकर सूचना दी कि अग्रोहा के महाराज अग्रसेन हैं, जिनका यश उगते सूर्य की भांति इस समय चारों दिशाओं में फैल रहा है। उनके स्वयं के सत्रह पुत्र हैं।

महाराजा दशानन को सुख–समाचार सुनाया गया। अग्रसेन की प्रशस्ति उन्होंने पहले ही सुन रखी थी। उन्हें यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि उनकी कल्पना से कहीं अधिक योग्य तथा महान राजा के ही घर में उनका प्रण पूरा हो सकता है। तुरंत उन्होंने सन्देश लिखकर पुरोहित के हाथ अपनी सत्रह कन्याओं का लगन अग्रोहा नरेश के यहां भेज दिया।

महाराज अग्रसेन उस समय अपने साम्राज्य की स्थिति को सुदृढ़ करने में लगे हुए थे। वे अपने आसपास के बड़े व शक्तिशाली राज्यों से सन्धि करने व सम्बन्ध बढ़ाने के प्रयत्नों में जुटे थे।

नागराज दशानन का सन्देश पाकर तो उनकी बांछें खिल गईं। उनको तो मानो मनकी मुराद मिल गई। जिस नागवंश की मित्रता के लिये बड़े–बड़े राज्य तरसते हैं, वही स्वयं उनकी ओर स्वेच्छा से झुक रहा है। उन्होंने नागराज की कन्याओं के लगन अपने सत्रहों पुत्रों के लिये तुरंत स्वीकार कर लिये।

महाराज अग्रसेन ने नागदेश के पुरोहित तथा दूत को बड़े आदर–सत्कार से कुछ दिनों तक अपने यहां रखा। विवाह का दिन, मुहूर्त आदि निकलवाया। कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार कर नागराज को देने के लिये अपने सन्देश के साथ उन्हें कई उपहार आदि देकर सम्मान के साथ विदा किया।

अग्रोहा में धूमधाम से सत्रह राजकुमारों के विवाह की तैयारियां होने लगीं। घर–घर मंगल वधावे गाये जाने लगे। तोरण–द्वार सजाये जाने लगे। हंसी–खुशी और उत्सवों का समां बंध गया। शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में गाजे–बाजे के साथ बारात नागलोक की ओर चल पड़ी। उधर नागलोक में भी समाचार पहुंच गये थे। राज्य परिवार तथा प्रजाजनों में हर्ष–उल्लास छा गया था। बारात के स्वागत की तैयारियां जोर–शोर से होने लगीं। बड़े–बड़े मण्डप, स्वागत–द्वार तथा अतिथिशालाएं बनवाए गए। सब भांति उन्हें सजाया–संवारा गया। विविध सुख–सुविधाओं की व्यवस्था कर दी गई। बारात के आगमन की उत्सुकता से प्रतीक्षा की जाने लगी।

विधाता की अद्‌भुत लीला से उस समय एक अप्रत्याशित घटना घटी, जिसने उस आनंद पर पानी फेर दिया और उत्साह ठंडा कर दिया। हुआ यह कि लगन भेजने के पश्चात प्रभु की कृपा से नागलोक की महारानी गर्भवती हो गई।

इसी अवसर पर जबकि समस्त नागलोक विवाह की तैयारियों में व्यस्त था, उन्होंने एक और कन्या को जन्म दिया। अब स्थिति नाजुक हो गई। नागराज की सत्रह की जगह 18 पुत्रियां हो गईं। उनकी प्रतिज्ञा के अनुसार सामने वालों के यहां भी 18 पुत्र होने चाहिएं। यह असंभव बात थी शुभ कार्य में व्यवधान पड़ गया और चारों ओर विषाद छा गया। मंत्रियों व परिजनों ने महाराज दशानन को बहुत समझाया परंतु वे अपनी प्रतिज्ञा भंग करने के लिये तैयार नहीं थे। उन्होंने महाराज अग्रसेन को सन्देश भिजवा दिया– 18 पुत्र हों तो दूल्हों को सजा कर बारात ले आवें, अन्यथा क्षमा करें।

महाराज अग्रसेन ने नागराज का सन्देश सुना तो वे स्तब्ध रह गये। उन्होंने इसमें अपना घोर अपमान अनुभव किया। वे अपने इस अपमान का बदला लेने के उद्‌यत हुए, परन्तु जब उन्हें नागराज की प्रतिज्ञा तथा अप्रत्याशित 18वीं कन्या के जन्म का ज्ञान हुआ तो वे शान्त हो गये। उनकी विवशता पर उन्हें भी दुख हुआ।

अब एक विकट समस्या खड़ी हो गई। सत्रह पुत्रों का विवाह नागराज के यहां तो हो नहीं सकता, 18वां पुत्र उनके था नहीं। बिना विवाह किये बारात लौटा ले जाने से सारे संसार में निंदा तथा अपयश होता था। बारात को रोककर वहां ठहरने में कोई आशा व लाभ नहीं दिखता था। वहीं रुकने रहने में घोर अपयश था, तो लौट जाने में भी मानहानि होती थी।

महाराज अग्रसेन द्विविधा में फंस गये। दुखी होकर वे आराध्य देवी मां लक्ष्मी की आराधना में जुट गये। अब तो बस उसी का आसरा शेष रह गया था। उसी ने उन्हें समय–समय पर हर संकट से उबारा था। आज भी मां ही रक्षा करेगी। वही इस संकट से भी उबारने का कोई उपाय करेगी। इसलिए वे दीन और आर्त होकर मां को पुकारने लगे। सच्चे हृदय से आर्त होकर पुत्र ने पुकारा तो मां प्रकट हो गई। भव–भय–हारिणी मां ने दुख दूर कर दिया। अग्रसेन के ज्येष्ठ पुत्र के दाहिने हाथ से एक अलौकिक बालक उत्पन्न कर समस्या का निवारण कर दिया। नागराज को भी उन्होंने समझाया। 18 पुत्र तथा 18 पुत्रियां। समस्या हल हो गई। बजो फिर बज उठे। हर्ष के सुनहले बादलों से आकाश आच्छादित हो गया।

शुभ दिन, शुभ लगन में दशानन ने कन्यादान कर महाराज अग्रसेन व उनके 18 पुत्रों का सम्मान किया। दो महान राज्य मधुर संबंधों से जुड़ गये। दो महान जातियां सदा–सदा के लिये अपनत्व के बंधनों में बंध गई। पवित्र रिश्तेनाते कायम हो गये, जो आज भी विद्यमान हैं। अग्रवाल आज भी नागों को अपना मामा कहते हैं। वे काले नाग को भी कभी नहीं मारते।

बलि का अश्व

आज से लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व भारत में आग्रेय-गण-राज्य एक समृद्ध राज्य था। इसकी राजधानी अग्रोहानगर थी। इस नगर के अवशेष आज भी इसी नाम से दिल्ली महानगरी से लगभग 200 किलोमीटर की दूरी पर मिलते हैं। आज के हरियाणा-राज्य में हिसार से लगभग 20 किलोमीटर की दूरी पर यह अग्रोहा नगर ध्वस्त अवस्था में आज भी विद्यमान है। इस आग्रेय-गणराज्य के संस्थापक महाराज अग्रसेन थे। ये वल्लभ के पुत्र थे। महाराज अग्रसेन बड़े पराक्रमी, नीतिवान, ज्ञानवान तथा प्रजा के हितैषी राजा थे। उनके 18 पुत्र थे। वे भी उनकी ही भांति बल-बुद्धिशाली और नीतिवान थे।

उस समय भारत खण्ड में राजाओं में प्रसिद्धि प्राप्त करने तथा महान कहलाने की परस्पर होड़ लगी रहती थी। महानता और प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिये उस समय यज्ञ करने की परम्परा चलती थी। जो राजा जितने अधिक यज्ञ करवाता था, वह उतना ही अधिक महान माना जाता था। इसी प्रकार चक्रवर्ती सम्राट बनने के लिये भी उस समय एक यज्ञ किया जाता था, जिसे अश्वमेध-यज्ञ कहते थे।

चक्रवर्ती सम्राट उस राजा को कहते थे, जो सम्पूर्ण पृथ्वी (ज्ञात सीमाओं तक) के शासकों को हरा कर उन पर विजय प्राप्त कर चुका हो। राजाओं को इस भूख के कारण प्रजाजनों को अनावश्यक दुख न हो तथा बिना कारण जन व धन का नाश नहीं हो, इस बात के ध्यान में रखकर उस समय के ऋषि-मुनियों तथा राजनीतिज्ञों ने मिलकर एक परम्परा की मर्यादा बांध दी थी। इस मर्यादा के अनुसार चक्रवर्ती सम्राट बनने के लिये किसी भी राजा को अश्वमेध -यज्ञ करना पड़ता था। इस यज्ञ में एक सुंदर घोड़े को श्रृंगार करके छोड़ दिया जाता था। अश्व की रक्षा के लिये राजा की सेना उसके पीछे-पीछे चलती थी। यज्ञ का वह अश्व अपनी इच्छा के अनुसार सारी पृथ्वी का भ्रमण करता था। जिस राज्य को वह अश्व पार कर जाता, वह जीता हुआ माना जाता था। जो राजा उस घोड़े को रोकता, उसे युद्ध कर हराया जाता था। इस प्रकार जब अश्व सकुशल वापस लौट

आता तो उसे विधि-पूर्वक पूजा आदि करके यज्ञ में बलि कर दिया जाता था। इस प्रकार अश्वमेध-यज्ञ के निर्विघ्न संपन्न हो जाने के उपरान्त यज्ञ करने वला राजा चक्रवर्ती सम्राट की उपाधि से विभूषित किया जाता था।

चक्रवर्ती सम्राट बनने के लिये महाराज अग्रसेन ने भी अश्वमेध यज्ञ की घोषणा कर दी। वैसे वे जीव-हिंसा को विरोध तथा प्राणी-मात्र पर दयावान थे। परन्तु उस समय के वैदिक पण्डितों के मतानुसार यज्ञों में दी जाने वाली पशु-बलि को हिंसा नहीं माना जाता था। उसे तो यज्ञ का हव्य और ईश्वर की अमानत माना जाकर बलि के रूप में उन्हें ही समर्पित माना जाता था। इन्हीं भावनाओं से प्रभावित होकर महाराज ने भी इस यज्ञ में अश्वबलि का विरोध नहीं किया। उन्होंने अपने समस्त पुत्रों के नाम से 18 यज्ञ करने का निर्णय लिया। सारी पृथ्वी पर चारों ओर उद्घोषकों को भेजकर घोषणा करवा दी गई। सभी राजाओं के पास लिखित सूचना भिजवा दी गई। सब प्रकार से विधिवत घोषणा का प्रचार-प्रसार हो जाने पर यज्ञ प्रारंभ किये गये। एक-एक करके प्रत्येक यज्ञ का अश्व छोड़ा जाता रहा। सारी पृथ्वी का चक्कर काटकर वह सकुशल लौट आता व बलि होता रहा। 17 यज्ञ इस प्रकार बिना किसी विघ्न के संपन्न हो गये।

18वें यज्ञ का आयोजन उत्साह-उमंग के साथ चल रहा था। अश्व संपूर्ण पृथ्वी का भ्रमण कर लौट आया था। उसे कई सुगंधित उबटनों-तेलों की मालिश कर नहलाया गया। इत्रों-अर्कों की सुगन्ध उस पर छिड़की गई। केसर, चन्दन और कुंकुम के तिलक किये गये। सोने-चांदी के गहनों से उसके अंग-अंग सजाये गये। एक से एक सुंदर रेशमी वस्त्र उसे पहिनाये गये। सिर पर कलगियों व गले में पुष्पहारों से उसे लाद दिया गया। मेवे-मिष्टान्नों का भोजन कराया गया। फिर गाजे-बाजे के साथ गाते-नाचते प्रजाजन तथा दरबारी उसे यज्ञशाला में ले आये। पुरोहितों ने अश्व का पूजन किया, यज्ञ का प्रसाद उसे दिया, पवित्र गंगाजल तथा यज्ञ-जल छिड़ककर उसे पवित्र किया। सभी प्रकार से शुद्ध कर बलिवेदी पर ले गये।

यज्ञ की पूर्णाहुति की तैयारी होने लगी। अश्व तो सजा-सजाया तैयार था ही। पुरोहित-गण पूर्णाहूति देने की सारी व्यवस्था पूर्ण कर चुके थे। हवन में घी की धार हवन की अग्नि में पहुंची तो यज्ञ की अग्नि ने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। पवित्र अग्नि की लाल-लाल लपटें गगन को छूने लगीं। उन लपलपाती भयंकर अग्निलपटों को देखकर यज्ञ का वह अश्व एकदम भड़क उठा। उसे

अपनी मौत का शायद आभास हो गया था। अपनी मौत के भय से वह चीत्कार करने लगा और बंधन तुड़ाने के लिये छटपटाने लगा। उसे शान्त करने के सारे प्रयत्न विफल हो गये। जीवन-रक्षा के लिये उसकी छटपटाहट और करुण प्रलाप महाराज अग्रसेन के कोमल हृदय को बींध गया। उन्हें लगा कि इस निरीह प्राणी की हत्या करने से कोई धर्म नहीं होगा। अपने स्वार्थ के लिये जीव हत्या करना ढोंग है। इस बलि से कभी परमात्मा प्रसन्न नहीं हो सकता। उन्होंने तत्काल अश्व की बलि न देने का आदेश दिया। पुरोहितों ने समझाया, तो भी वे न माने। हताश पुरोहित निराश व नाराज होकर जाने लगे। यज्ञ अधूरा ही रह गया।

आमंत्रित राजा लोग उनकी इस मूर्खता पर हंसने लगे। महाराज अग्रसेन को पागल बता-बताकर वे उनकी खिल्ली उड़ाने लगे। उनके स्वयं के सभासद् भी उनसे रूठ गये। राज्य के गणमान्य जन उनकी भर्त्सना करने लगे। अग्रसेन उन सबका ऐसा व्यवहार देख दुखी हुए, परन्तु अहिंसा के अपने निर्णय नहीं डिगे। उन्होंने पुरोहितों से कहा- आप बिना बलि के यज्ञ की पूर्णाहूति दीजिये। हिंसा से धर्म नहीं होता। केवल बलि नहीं देने से कोई यज्ञ अधूरा नहीं रह सकता । किन्तु पुरोहितो ने यह स्वीकार नहीं किया। उन्होंने जवाब दिया कि बिना बलि के यज्ञ किसी तरह से पूर्ण नहीं हो सकता।

महाराज अग्रसेंन ने भी इस पर अपना अटल निर्णय सुना दिया-। यज्ञ में किसी प्रकार की कोई बलि नहीं दी जाएगी। आपके द्वारा पूर्णाहुति नहीं देने के कारण भी मेरा यज्ञ अधूरा नहीं रहेगा। यह यज्ञ पूर्ण होगा। यज्ञ के अधिष्ठाता ब्रह्माजी स्वयं देवताओं के साथ आकर अपना हव्य ग्रहण करेंगे। इसी घोषणा के साथ वे आंख मूंद कर अपने आसन पर बैठ गये। अपनी कुलदेवी माता लक्ष्मी का आह्वान करने लगे। सच्चे भक्त की करूण पुकार सुनकर मां लक्ष्मी तत्काल यज्ञवेदी पर प्रकट हुई। अग्रसेन की निष्पाप वृत्ति तथा प्राणियों पर दया की भावना से वे बहुत प्रसन्न हुई। उन्होंने स्वयं ब्रह्माजी का आह्वान किया और हव्य ग्रहण करने के लिए निवेदन किया।

ब्रह्माजी तो स्वयं हिंसा से अप्रसन्न थे। वे बलि प्रथा को पसन्द नहीं करते थे। अग्रसेन की इस कार्यवाही से वे अति प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रकट होकर अपना हव्य स्वयं ग्रहण कर अग्रसेन को आशीर्वाद दिया। केवल महाराज अग्रसेन को ही नहीं, अपितु उनकी सतत सन्तति को भी चक्रवर्ती सम्राट के चिन्ह धारण करने का वरदान दिया।

हमारे देश में आज भी अग्रवाल -जाति के लोग अपने पुत्रों के विवाह में छत्र, चंवर तथा चांदी की छड़ का प्रयोग इसी कारण करते है। आशीर्वाद देकर ब्रह्माजी व लक्ष्मीजी अपने -अपने लोक को प्रस्थान कर गये। महाराज तथा उनकी अहिंसावृति की जीत हो गई। पुरोहित, सभासद व अन्य राजागण आदि जो पहिले महाराज की खिल्ली उड़ा रहे थे, अब शर्म के मारे जमीन में गड़नें लगे। वे महाराज के चरणों में गिर-गिर कर बार -बार क्षमा मांगने लगे। उदार -हृदय महाराज ने उन्हें क्षमा कर दिया।

इसके पश्चात महाराज ने अपने राज्य में कानून बनाकर हिंसा व पशु-बलि बन्द करवा दी। उन्होंने सभी प्राणियों के साथ प्रेम तथा स्नेह का व्यवहार करते हुए कई वर्षो तक सुख -पूर्वक राज्य किया।

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्य तस्मान्मासं विवर्जयित॥

-मनु स्मृति 5-48

न मांसेनः वैकुण्ठः न मद्येन दयानिधे
उभाभ्याम रहितो जीवो न हि पापेन लिप्यते॥

-महालक्ष्मी वृत्त कथा

यज्ञै, पशुवधो जातस्ततो मे हृदि घृणाअभवत्।
उचितं नैव मन्येअहम अधुना पशु -हिंसनम॥

-उरू -चरितम - 101

नाग-कन्याओं के चोले

वैश्यकुल-भूषण महाराज अग्रसेन ने अपने समस्त समाज को संगठित कर एक सबल वैश्य -राज्य की स्थापना की। नया नगर अग्रोहा बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। स्वयं अठारह विवाह कर अनेक राज्यों से मित्रता के संबंध स्थापित किये। अपने अठारह पुत्रों का विवाह नागवंश में नागकन्याओं से कर अपनी राजनैतिक स्थिति को अत्यन्त ही सुदृढ़ बना लिया। इस प्रकार निशंक होकर वे सुखपूर्वक राज्य करने लगे।

इस प्रकार वर्षो बीत गए। महाराज की उम्र ढलने लगी। समय के साथ वे वृद्धावस्था की ओर झुकने लगे। उन्हें सारे सुख थे, परन्तु एक भंयकर दु:ख भी था। इतनी उम्र ढल जाने पर भी उन्हें अपने पौत्र का मुख देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। विवाह को कई वर्ष बीत जाने पर भी उनकी किसी पुत्र की कोई संतान नहीं हुई थी। कोई पुत्र-वधु आज तक गर्भवती नहीं हुई थी। चिंता और शंकाओं ने उन्हें घेर लिया । आखिर इसका क्या कारण है? क्यों किसी राजकुमार की संतान नहीं होती? कोई देवी-प्रकोप है या कोई शाप अथवा कोई प्राकृतिक बाधा। उनके पुत्रों के ही पारिवारिक संबंधो में तो कोई खलल नहीं । महाराजा ने इसका कारण जानने के लिए प्रयास किये। अपने विश्वास -पात्र गुप्तचरों को इसका भेद ज्ञात करने के आदेश दिये। अत्यन्त ही गोपनीय ढंग से इन सब बातों का पता लगाने के लिए सभी राजकुमारों के महलों में गुप्तचरी का जाल बिछा दिया गया।

बहुत छान-बीन तथा सूक्ष्म जांच-पड़ताल कराई गई। गुप्तचरों ने रात-दिन एक कर दिया। आखिर भेद की बात का पता लग ही गया। बड़ी आश्चर्य -जनक बात थी। कोई भी राजकुमार रात्रि में अपनी पत्नियों के कक्ष में नही जाता था। कोई भी नागकन्या रात्रि में अपने कक्ष से बाहर नहीं आती थी।

क्यों, आखिर क्यों? संतान न होने का कारण तो ज्ञात हुआ। परन्तु भेद और भी गहरा हो गया। इस व्यवहार का क्या रहस्य है? क्यों कोई भी राजकुमार रात्रि में अपनी पत्नी के शयनागार में प्रवेश नहीं करता? क्यों कोई भी पुत्रवधू

संध्या के पश्चात सूर्योदय तक अपने कक्ष के बाहर नहीं आती? ज्यों-ज्यों इस मामले में विचार किया जाता त्यों-त्यों मामला और भी उलझता जाता था। महाराज को यह रहस्य समझ में नहीं आया। किसी अन्य से इस मामले में परामर्श भी नहीं किया जा सकता था। अपनी ओर से उन्होंने बहुत प्रयत्न किये, परन्तु वे इस रहस्य का कोई ओर-छोर नहीं पा सके।

एक बार फिर से गुप्तचरों की सभा बुलाई गई। इस बार स्त्री-गुप्तचरी से सहायता ली गयी। उन्हें परिचारिकाओं के रूप में नागकन्याओं के महलों में भेजा गया। नागकन्याएं इन सब बातों से अनभिज्ञ थी। उन्होंने सहर्ष अपने महलों में इन नयी परिचारिकाओं की नियुक्ति को स्वीकार कर लिया। वे प्रसन्नता पूर्वक उनसे काम लेने लगीं। दिन-भर में उनको साथ रखती, उनसे सेवा-शुश्रूषा करातीं, अपने पतियों से भी दिन-दिन में ही वे मिलती थी। उनसे प्रेम-भरी बातें करती, हंसती, बोलती रहती और सूर्यास्त होते-होते वे सभी अपनी परिचारिकाओं की छुट्टी कर देती थीं और पतियों से भी विदा ले लेती थी। फिर अपने-अपने कक्षों में जाकर बन्द हो जाती और फिर सूर्योदय होने पर ही उनके दर्शन होते।

परिचारिकाएं सभी अपने-अपने तरीकों से सत्य का अन्वेषण करने में जुट गई । येन-केन प्रकारेण उन्हें रहस्य को उजागर करना ही था। इसके लिये वे छिपे भेद पर से पर्दा उठाने के लिए कृत-संकल्प थी । हर पल, हर घड़ी , हर तरह से टोह लेती थी। वे रात-दिन चौबीसों घंटे सजग थी। उनकी छिपी आंखे हर पल नागकन्याओं का पीछा करती रहती थी।

महीनों की मेहनत के पश्चात परिचारिकाओं ने आखिर यह भेद भी जान लिया और हर तरह से अपनी जानकारी की पुष्टि कर ली। पूरी तरह से संतुष्ट होने पर भेद की बात महाराज को बता दी गई। स्थिति बड़ी विस्मयकारी तथा नाजुक थी। बात यह थी कि नागकन्याएं दिन -भर तो मानवीय स्वरूप में रहती थी और मानवीय रूप में ही सबसे संपर्क भी रखती, पतियों से मिलती, बात करती, सखी-सहेलियों से हंसती बोलती और सासु -ननदों की सेवा में भी जाती थी। इस प्रकार सूर्य का प्रकाश रहते वे सारे मानवीय कर्म करती थीं। रात-भर वे इसी रूप में रहती थी। यही कारण था कि न कोई राजकुमार रात्रि में उनके पास जाता था तथा नाही नागकन्याएं अपने कक्ष से बाहर निकलती थी।

दिन में जब नागकन्याएं मानवीय स्वरूप में रहती थी, तब अपने नागस्वरूप के चोले कही छिपा देती थी। वे चोले कहां छिपाकर रखती थी, लाख प्रयत्न करने पर भी कोई परिचारिका ज्ञात नहीं कर सकी।

रहस्य की पर्ते खुल गई । भेद पर से पर्दा उठ गया । परन्तु समस्या वैसी की वैसी ही बनी रही। नागकन्याओं से उनके चोलों को कैसे दूर किया जाए ? क्या उपाय किये जाएं कि वे सदा मानवीय स्वरूप में ही रहे ? महाराज ने इस संबंध में अपने पुत्रों से बात की तो उन्होंने बताया कि नागकन्याएं किसी भी हालत में अपने पैतृक चोलो को एक रोज के लिए भी त्यागने के लिए तैयार नही है। पति से बढकर नारी के लिए संसार में और कौन हो सकता है ? जब नागकन्याओं ने अपने पतियों की बात भी नही मानी तो और कौन उन्हें समझा सकता था ? समस्या बड़ी विकट थी । किसी को उसका निदान नहीं सूझ रहा था। निराशा के बादल गहराने लगे। ऐसे कठिन समय में महाराज को अपने भानजे जसराज की याद आई । जसराज को, जो मुनि हो गया था व वन में रहकर तपस्या करने में ही लीन रहता था, महाराज ने तुरन्त संदेश भेजा । अपनी विकट समस्या का हवाला देते हुए उसे शीघ्र ही अग्रोहा आने का निमंत्रण दिया।

मामा के दु:ख के समाचार पाते ही जसराज दौड़ता आया। महाराज को सान्तवना देकर धीरज बंधाया । धीरे-धीरे सारे समाचार मालूम किये। सारी घटनाओं व परिस्थितियों का अध्ययन किया तथा समस्या के हल के विषय मे सोचने लगा। बहुत विचार करने के उपरान्त उन्होंने महाराज से कहां-

मामाजी कठिनाइयां और समस्याएं तो जीवन में आती ही है, परन्तु आदमी को उनसे हताश होकर धैर्य का संबल नहीं छोड़ना चाहिए। जो व्यक्ति धैर्य-पूर्वक सतत प्रयत्न करता रहता है, उसकी कोई समस्या विकट नहीं होती, परन्तु जो अधीर होकर साहस खो देता है, उसके तो बनते काम भी बिगड़ जाते है। इसलिए आप चिंता को त्याग कर धीरज धारण कीजिए। इससे यह काम भी आप ही सरल हो जायेगा। मैनें इस समस्या का समाधान अपने योग-बल से जान लिया है, परन्तु यह कार्य आने वाली नागपंचमी से पूर्व नहीं हो सकेगा। आप तब तक प्रतीक्षा कीजिए । मैं समय पर स्वयं आप से आकर मिलूगां। आप निश्चिन्त रहिये। समस्या कोई खास कठिन नहीं है। यह तो बड़ी आसानी से हल हो जायेगी। बस, आप केवल समय की प्रतीक्षा कीजिए और तब तक इस बात को गुप्त रहने दीजिए। इस प्रकार ढाढ़स बंधाकर जसराज वापिस अपने आश्रम को चला गया। महाराजा अग्रसेन को अपने भानजे पर पूरा विश्वास था। वे कुछ-कुछ आश्वस्त हो गये। उन्हें भरोसा बंध गया कि आने वाली नागपंचमी को इस समस्या का अवश्य ही निदान हो जायेगा। वे धैर्यपूर्वक श्रावण शुक्ला पंचमी की प्रतीक्षा करने लगे।

जसराज ने अपने योग बल से यह जान लिया था कि नागकन्याएं केवल नागपंचमी के दिन ही जब वे सरोवर में स्नान करने जाती है, तभी अपने चोलो को अपने से दूर करती है। उस समय ही किसी तरह उनके चोलों को प्राप्त कर यदि कोई व्यक्ति उनको लेकर जीवित जल जाए तो ही नाग - कन्याओं को उन चोलो से छूटकारा मिल सकता है। अन्यथा चोलों को सदा के लिये त्याग देना स्वयं नागकन्याओं के भी बस की बात नहीं है।

दिन जाते समय नहीं लगता । एक -एक कर दिन और महीने बीत गये। नागपंचमी आ गई। नागकन्याएं सरोवर पर स्नान करने के लिये पहुंची । वे ज्योंही अपने चोलो को किनारे पर रख कर सरोवर के जल में उतरी , जसराज उन चोलो को ले उड़ा । वह सभी अठारह नागकन्याओं के चोले लेकर महाराज अग्रसेन के पास पहुंचा । उस समय काफी दिन चढ़ चुका था। महाराज चिंतित मुद्रा में बैठे उसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने जैसे ही जसराज को देखा तो वे खुशी से उछल पड़े । दौड़ कर उसे गले से लगाया अधीर होकर पूछने लगे- भानजे बड़ी देर कर दी। क्या किया है अब तक तूने ? मुझे जल्दी से बता । मेरे तो प्राण ही इस समस्या में अटक कर रह गये है।

जसराज ने अपने मामा को धैर्य बंधाते हुए कह - आप अधीर मत होइये । मैं नाग- कन्याओं के चोले ले आया हूं। आप तत्काल चन्दन की चिता तैयार कराइये। इसमें तनिक भी विलम्ब मत कीजिए। यदि नागकन्याओं को अपने चोलों की चोरी का पता चल गया तो गजब हो जाएगा। सारा बना बनाया खेल ही बिगड़ जाएगा। इससे पहले कि उन्हें पता चले और वे चोलों को ढूंढती हुई यहां तक पहुंचे , मै अपनी योजना पूरी कर लेना चाहता हूं। आप एक पल की भी देर किये बिना तत्काल चिता तैयार कराइये। ऐसा न हो कि बनी बात बिगड़ जाये और फिर हमें पछताना पड़े।

महाराज ने तत्काल सेवकों को आदेश दिया। चन्दन की लकड़ियां बड़ी मात्रा में मंगवा कर बिना देर किये चिता तैयार करवा दि गई। उसमें घी डाल कर उसी समय अग्नि भी प्रज्वलित कर दी गई। जब चिता ने पूरी तरह आग पकड़ ली, और धू-धू कर लपटे आकाश को छूने लगी तो उसी समय जसराज नागकन्याओं के चोलो सहित चिता में कूद गया। पलक झपकते ही यह काम हो गया। महाराज ओर सेवकगण जब तक समझे, सोचें तब तक तो जसराज नागकन्याओं के चोलों सहित चिता की भयंकर ज्वाला में जलकर स्वाहा हो गया। उसने अपना बलिदान देकर महाराज को दुख से उबार दिया। हा जसराज हा भानजे

कहते करूण विलाप करते महाराज को सेवकों ने थामा। वे उन्हें किसी प्रकार महलों में ले गये।

नागकन्याएं जब स्नान कर सरोवर से बाहर आई तो अपने चोलो को यथास्थान पर न पाकर व्यथित हो इधर-उधर ढूंढने लगी। बहुत ढूंढा पर चोले न मिले। मिलते भी कैसे । हताश और दु:खी होकर वे मन मारे महलों को लौट आई। वहां आकर जब उन्हें सही बात का पता चला तो अपने चोलों के लिए वे सभी विलाप करने लगी। रोती बिलखती वे महाराज के पास अपनी फरियाद लेकर पहुंची।

महाराज ने उन्हें ढाढ़स बंधाया । उन्होंने अपनी बहुओं को समझाया कि अब तुम्हें पितृ पक्ष का मोह त्याग कर ससुराल के हित का विचार करना चाहिए। अब तो ससुराल ही तुम्हारा अपना घर है। इसके कल्याण और कुल की वृद्धि में ये चोले बाधक थे। अत: उनका नष्ट हो जाना ही तुम्हारे व हमारे लिये हितकर है। जो हो गया, उसका दु:ख मत करो। अपने भविष्य के बारे मे विचार करो। शांत होकर अपने कुलधर्म और नारी -धर्म का पालन करो। यही हमारे लिये श्रेयस्कर है। जसराज ने तुम्हारे ही भले के लिए ये चोले चुराये तथा उनके साथ जल कर अपना भी बलिदान दे दिया। उस पर भी क्रोध करना व्यर्थ है। जाओ शांत होकर गृहस्थ धर्म का पालन करों । नारियों के लिए यही सबसे महान धर्म है। फिर भी मैं तुम्हें वरदान देता हूं कि हमारे कुल में अनन्त काल तक तुम्हारे इन चोलों के प्रतीक की पूजा होती रहेगी। मैं एसी व्यवस्था करूंगा कि परम्परा रूप में इनकी याद सदा सर्वदा हमारी संताने अपने हृदयों में तथा सामाजिक रीति -रिवाजों में संजो कर सुरक्षित रखेंगी।

अग्रवाल समाज में आज भी इन चोलों का प्रतीक जिन्दा है। कन्या के विवाह के समय उसके लिये विशेष रूप से बिन -धुले वस्त्र मामा की ओर से सिलवाये जाते है। नागों को अग्रवाल अपना मामा मानते है। इसलिये नागों के चोलों के प्रतीक रूप मे ही कन्या वस्त्र मामा से सिलवाये जाते है। ये वस्त्र पहन कर कन्या चंवरी में बैठती है। शादी के पश्चात ये ही वस्त्र कन्या के ससुर को अलग से सौंपे जाते है। शायद इसी घटना की याद दिलाने के लिये कि नाग-कन्याओं के ससुर ने भी उनके चोले चोरी करवा कर मंगवाये थे और उसकी पुनरावृत्ति उनके ससुरों को भी न करनी पड़े।

जसराज

जसराज महाराज अग्रसेन का भानजा था। वह पक्का योगी व शिव-भक्त था। शिवजी की आराधना और तपस्या के लिये वह नगर से दूर एकान्त में कुटी बनाकर सदा धूनी रमाये भगवान शंकर के ही ध्यान में लीन रहता था। अग्रसेन का अपने भानजे पर विशेष स्नेह था। उसी प्रकार जसराज भी अपने मामा का बड़ा आदर करता था। वह अपने मामा को एक महान तथा आदर्श पुरुष मानता था। इसी से वह सदा उनकी सेवा के लिये तत्पर रहता था।

महाराज अग्रसेन की सभी पुत्र-वधुएं नागकन्याएं थीं। वे सदा अपने नागीय चोलों में रहती थीं। फलस्वरूप अग्रसेन के पुत्रों की वंश-वृद्धि अवरुद्ध हो गई। नागकन्याअबों के चोलों की समस्या की समाधान के लिये महाराज ने जसराज को याद किया। नाग-पंचमी के दिन जब नागकन्याएं सरोवर में स्नान कर रही थीं, वह उनके चोले चुरा लाया तथा महाराज के देखते-देखते चिता जलवाकर स्वयं उन चोलों के साथ जलकर भस्म हो गया। इस प्रकार नाग-कन्याओं के चोलों की समस्या समाप्त हो गई। महाराज की वंश-वृद्धि पर लगा ग्रहण भी हट गया, परंतु इस सबके लिये अपने भानजे, पुत्रवत् प्राणप्रिय जसराज को खोकर वे अत्यन्त दुखी हो गये।

महाराज अग्रसेन को दुख के साथ-साथ डर भी लगने लगा कि जब जसराज की मृत्यु का समाचार उनकी बहन सत्यवती को मिलेगा तो उसकी क्या दशा होगी? वह पुत्र शोक के दुख को सहन कर सकेगी या पागल हो जायेगी? वह भगवान भोलेनाथ की भक्तिन व स्वभाव से क्रोधी है। मेरे व मेरे परिवार के हित के लिये ही जसराज के प्राण त्यागने की बात जानकर विक्षिप्तावस्था में वह शाप देकर फिर से हमारा अहित कर सकती है। दुख के आवेग को न सम्हाल सकने के कारण वह अपने प्राण भी दे सकती है। भावावेश में वह कुछ भी कर सकती है। अनिष्ट की आशंका से महाराजा कांप उठे। उनकी चिंता बढ़ गई। वे सोचने लगे- जसराज ने अपना बलिदान मेरे ही कारण तो दिया है। मैं ही उसकी

मृत्यु का हेतु हूं। उसने अपना बलिदान देकर मुझ पर जो ऋण चढ़ाया है, मैं उससे कभी उऋण नहीं हो सकूंगा। फिर भी मैं उसे पुनर्जीवित करने के लिये प्रयत्न करूंगा। मौत के मुंह से वापस खींच लाऊंगा। अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी उसे फिर जिलाऊंगा। जसराज भगवान शिव का परम भक्त था। मैं भी उनकी आराधना कर उन्हें प्रसन्न करूंगा। भोलेनाथ औघड़दानी हैं, सहज प्रसन्न होने वाले हैं। मैं उन्हें प्रसन्न कर उनसे उनके ही भक्त के प्राणों की भीख मांगूंगा। यह विचार कर उन्होंने जसराज की चिता की भस्म को यथावत सुरक्षित रखने के लिये ढकवा दिया तथा सेवकों को उसकी निगरानी के लिये नियुक्त कर दिया और स्वयं भगवान शंकर की उपासना करने के लिये जंगल में प्रस्थान कर गये।

वन में जाकर महाराज अग्रसेन ने भगवान भोलेनाथ की उपासना आरंभ कर दी। धूनी रमा कर महादेव का जाप करते अखण्ड समाधि में लीन हो गये। भोले भक्तों के रखवाले भगवान शंकर तो तुरंत ही प्रसन्न होने वाले हैं। वे अग्रसेन की साधना से प्रसन्न हो प्रकट हुए और महाराज से वर मांगने के लिये कहा।

महाराज ने भोलेनाथ के चरण पकड़ लिये। पांवों पर सिर रखकर साष्टांग प्रणाम किया और बोले- भगवन्, आप तो कृपानिधान हैं, औघड़दानी हैं, भक्तवत्सल और भव-भय-हारी हैं। प्रभो, मैं एक तुच्छ और पामर प्राणी हूं। मेरे ही कारण आपके परम भक्त जसराज ने चिता में जलकर अपने प्राण त्याग दिये हैं। आप दया करके प्रभो, उसे पुनर्जीवित कर दीजिए। उसकी मां शोक-विह्वल हो अपने प्राण त्याग देगी। भगवन्, मुझे उन दोनों की हत्या के पाप से बचा लीजिये। यह कहते-कहते महाराज फिर भगवान के चरणों में गिर पड़े।

भोलेनाथ ने उन्हें सांत्वना देकर कहा- उठो अग्रसेन, तुम्हारे बहन व भानजे के प्रति स्नेह से मैं प्रभावित हुआ हूं। मैंने जसराज को पुनर्जीवित कर दिया है। तुम निश्चिंत होकर अपने घर जाओ। तुम्हारा भानजा वहां तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

महाराज अग्रसेन गद्‌गद् हो उठे। उन्होंने भाव-विह्वल होकर भगवान शिव-पार्वती की स्तुति की। अर्चना के स्वरों की करुणा भगवान के हृदय को बींध गई। वे पुन: प्रसन्न होकर माता पार्वती के संग प्रकट हुए। उन्होंने अग्रसेन को वरदान दिया कि तुम्हारी संतति महाप्रलय तक उत्तरोत्तर वृद्धि और विकास को प्राप्त करती रहेगी। जब तक नीति तथा धर्म का आचरण करते हुए तुम्हारी संतान सत्कर्म करेगी तथा मांस-मदिरा का सेवन नहीं करेगी, तब तक निरंतर

धन-धान्य, सुख-समृद्धि पूरित हो संपन्न रहेगी। भगवान भोलेनाथ ने एक गद्दी तथा मां पार्वती ने एक संदूकची भी महाराज को दी। उन दोनों वस्तुओं को सदा अपने व्यवसाय-धंधे के स्थान पर साथ रखने का उपदेश दिया। उन्होंने कहा- जब तक तुम्हारे कुल में इन दोनों वस्तुओं गद्दी और गल्ला के प्रति सम्मान बना रहेगा, तब तक तुम्हारे कुल में व्यवसाय-धंधे में सदा बरकत होती रहेगी। इसीलिये अग्रवाल-वैश्य अपने दुकान व व्यवसाय-स्थल को शिव की पेढ़ी अथवा शिव की गद्दी कहते हैं तथा गल्ले की पेटी अर्थात् केश बाक्स को मां पार्वती की पेई कहकर उसमें भवानी का चिन्ह त्रिशूल अंकित करते हैं।

उधर जब जसराज की माता कुमुदकुमारी, सत्यवती को अपने पुत्र के चिता में जलकर मरने का समाचार मिला तो वह अत्यन्त दुखी हुई। कुपित होकर विलाप करती वह अपने भाई अग्रसेन के यहां पहुंची। वहां पहुंच अपने भाई तथा उसकी पुत्रवधुओं को कोसती, बुरा-भला कहती रुदन करने लगी। किन्तु जब जीवित हुआ जसराज सकुशल उसके समक्ष आकर खड़ा हुआ तो विस्मय तथा हर्ष से प्रफुल्लित हो गई। उसका क्रोध शांत हो गया। रोना-धोना बंद कर, अपने व्यवहार के लिये उसने सबसे क्षमा मांगी। महाराज ने उसे उचित सम्मान देकर अपने पास बिठाया, तथा सारा वृत्तांत उसे विस्तार-पूर्वक सुनाया। उन्होंने कहा- बहन। मैं तथा मेरी संतान सदा-सर्वदा जसराज के ऋणी रहेंगे। यदि जसराज अपना बलिदान न देता तो मेरा वंश मेरे पुत्रों के बाद समाप्त हो जाता। इसलिये हे बहिन, तुम्हारा व तुम्हारे पुत्र जसराज के वंशजों का मेरे वंश में सदा मान-सम्मान होता रहेगा। जसराज तथा उसकी संतान को मेरे वंशज सदा भाटराजा कहकर आदर देंगे तथा अपने से ऊंचा स्थान देंगे।

महाराज अग्रसेन के दिये इसी वचन के कारण आज तक जसराज के वंशज अग्रवालों के भाट का कार्य करते आ रहे हैं। इन्हीं भाटों ने हमारे इतिहास को गीतों, कथाओं, किंवदन्तियों आदि में पिरोकर आज तक सुरक्षित रखा है। सभी अग्रवाल इन भाटों का मान-सम्मान करते हैं तथा जब भी कभी ये लोग किसी के यहां पधारते हैं, तो इनका समुचित आदर-सत्कार कर उन्हें ऊंचा स्थान दिया जाता है।

सन्यासी का शाप

महाराज अग्रसेन ने 108 वर्षों तक अग्रेय-गण में राज्य किया और फिर अपने पुत्र विभु को सत्ता सौंपकर वे वन-गमन कर गए। विभु ने भी 100 वर्षों तक शासन किया। विभु के पश्चात नेमिनाथ, उसके बाद विमल, फिर शुकदेव, धनंजय, श्रीनाथ, दिवाकर, सुदर्शन आदि ने इस राज्य की बागडोर संभाली। इस प्रकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी आग्रेय-राज्य पर अग्रसेन जी की संतानें नीति तथा धर्म-पूर्वक शासन करती रहीं। कालान्तर में भारत में जैन धर्म का प्रभाव बढ़ा तो दिवाकर नाम के राजा ने भी जैन धर्म की दीक्षा ले ली। तब से अग्रोहा में जैन धर्म की मान्यता बढ़ने लगी तथा शनैः-शनैः वैष्णव धर्म तथा मां लक्ष्मी की पूजा समाप्त हो गई। एक समय ऐसा भी आया जब संपूर्ण अग्रोहा जैन बन गया। जैन-गुरु लोहाचार्य के प्रभाव के कारण अग्रोहा में एक भी वैष्णव लक्ष्मी भक्त नहीं बचा। उसी समय भ्रमण करते-करते एक संन्यासी श्रृंगनाथ अपने शिष्य कीर्तिनाथ के साथ अग्रोहा के निकट आये। सुंदर भव्य नगर तथा आसपास के सुरम्य प्राकृतिक वताावरण को देख उनकी इच्छा कुछ दिन तक वहीं प्रवास करने की हो गई। उन्होंने अपने शिष्य को अपनी इच्छा बताते हुए आदेश दिया- 'वत्स! यह स्थान बड़ा ही रमणीक तथा सुंदर है। कुछ दिन यहां ठहरकर प्रभु का स्मरण किया जाए तो आनंद रहेगा। पास ही यह भव्य नगर भी है। इतने बड़े नगर से हमारे आहार, पानी आदि की व्यवस्था भी सुगमता से हो जाएगी, इसमें संदेह नहीं है। अतः हम अब कुछ दिन यहीं पर धूनी रमाकर भगवद् भजन करेंगे।'

शिष्य को भला गुरू की इच्छा से कोई विरोध कैसे हो सकता था? फिर स्थान तथा वातावरण भी पूरी तरह उपयुक्त ही प्रतीत हो रहे थे। अतः एक सुंदर स्थान देखकर उसने वहां की सफाई की तथा सूखी लकड़ियां बीनकर धूनी प्रज्वलित कर दी। संन्यासी श्रृंगनाथ ने अपने शिष्य को धूनी निरंतर प्रज्जवलित रखने तथा नगर से भिक्षाटन कर अपने आहार की व्यवस्था करने का आदेश दिया और स्वयं समाधिस्थ हो गये। कीर्तिनाथ अपने गुरू का आदेश मान नगर से

कुछ आहार मांग लाने के लिये चल पड़ा। अग्रोहा पहुंचकर वह आश्चर्य चकित रह गया। बड़े-बड़े विशाल भवन, उद्यान, चौड़ राजमार्ग सारे विश्व का वैभव जैसे वहीं सिमट आया हो। नगर देखते-देखते काफी समय व्यतीत हो गया, परंतु किसी गृहस्थ ने उसे भोजन तो क्या, पानी तक के लिये भी नहीं पूछा। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। विवश हो उसने एक गृहस्थ के द्वार पर जाकर अलख जगाई परंतु उसने उसे भिक्षा नहीं दी। उसने दूसरा द्वार खटखटाया, फिर तीसरा, फिर चौथा और इसी प्रकार वह लगभग सारे ही नगर में घूम गया। पर किसी भी गृहस्थ ने उसे भिक्षा नहीं दी। जैन-गुरू लोहाचार्य का इतना प्रबल प्रभाव था कि अग्रोहा-निवासियों ने संन्यासी की घोर उपेक्षा, अवहेलना और अवमानना की। दुखी तथा निराश हो, भूखा-प्यासा कीर्तिनाथ वापस खाली हाथ नगर से लौट आया।

अपने स्थान पर वापस आकर कीर्तिनाथ शिथिल सा हो गया। सरोवर के शीतल जल से दो घूंट पानी पीकर जंगल से लकड़ियां बीनी तथा धूनी के पास बैठ गया। गुरू के दूसरे आदेश के अनुसार धूनी को प्रज्वलित रखने का प्रयास करता रहा। किसी तरह मरते-डूबते रात तो बीत गई पर सुबह तक कीर्तिनाथ बहुत ही शिथिल हो गया। फिर भी किसी तरह व उठा, शौचादि से निवृत्त होकर फिर कुछ लकड़ियां बीनकर भिक्षा लाने को चला। भूख से व्याकुल काया शक्तिहीन हो रही थी। उसे चक्कर से आने लगे। गिरते-पड़ते उसने किसी भांति कुछ लकड़िया इकटठी कीं। धूनी को दिन-भर के लिये अच्छी प्रकार प्रज्वलित कर वह फिर एक बार क्षुधा का शमन करने हेतु नगर की ओर चल पड़ा।

नगर में आज तो स्थिति कल से भी हीन थी। अवहेलना के स्थान पर आज वह नागरिकों के उपहास तथा भर्त्सना का केन्द्र बन गया। वैष्णव सन्यासी को हेय दृष्टि से देखने वाले जैन-मतानुयायियों ने तानों, व्यंग्यों तथा प्रताड़नाओं से उसके मन-मस्तिष्क को बींध डाला। इस प्रकार अत्याधिक अपमानित और क्षुधा से पीड़ित होकर वह नगर से वापस लौट पड़ा। उस समय उसकी यह दीनहीन दशा देखकर एक कुम्हारिन को उस पर दया आ गई। वह उसकी हालत पर तरस खाकर उसे अपने घर ले गई। उसे उसने भरपेट भोजन कराया तथा एक कुल्हाड़ी दी जिससे लकड़ी काटकर वह अपना गुजारा कर सके। कीर्तिनाथ भोजन कर और कुल्हाड़ी लेकर उस कुम्हारिन को आशीष देता वापस लौट आया। तीसरे दिन से कीर्तिनाथ ने मधुकरी के लिये जाना छोड़ दिया। वह कुल्हाड़ी से लकड़ियां काटता और लकड़ियों का भार सिर पर उठाकर नगर में बेच

आता। उससे जो भी प्राप्त होता, उसी से वह अपना निर्वाह करता तथा अपने गुरू की सेवा-शुश्रूषा करता और धूनी को निरंतर प्रज्जवलित रखता। इस प्रकार 6 माह व्यतीत हो गये।

6 माह बाद ध्रुंगनाथ की समाधि समाप्त हुई। उन्होंने धूनी को प्रज्वलित पाया। अपने स्थान को भी स्वच्छ, सुंदर तथा पवित्र पाया। शिष्य की तत्परता और सेवा से वे प्रसन्न हुए। उन्होंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। कीर्तिनाथ उस समय जंगल से काटकर लाई हुई लकड़ियों का भार बना रहा था। शिष्य को ऐसा करते देख उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने उससे पूछा- 'क्या बात है वत्स! तुम यह काठ का भार किसलिये बना रहे हो? क्या तुम कहीं किसी मोह-माया में फंस गये हो अथवा किसी प्रकार की संग्रह की तुम्हारी नीति हो गई है? क्या तुम्हें यह संदेह हो रहा है कि भविष्य में किसी कारण-वश हमें धूनी के लिये समिधाओं की उपलब्धि नहीं हो सकेगी, इसलिये तुम इनका संग्रह करके रखना चाहते हो? कहीं तुम इस नगर के नागरिकों के वैभव और विलास को देखकर गृहस्थ जीवन की ओर आकृष्ट तो नहीं हो रहे हो? क्या इस नगर के नागरिकों ने तुम्हें बहुत प्रभावित किया है, उनके विचार कैसे हैं, मुझसे कहो। अपनी कुशलता आदि के समाचार भी मुझे विस्तार से कहो। तुम मुझे कुछ क्षीण से लग रहे हो। क्या तुम्हारे मन में कोई चिंता या तन में कोई व्याधि है? मुझे बताओ तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं है।

अपने गुरू की समाधि टूटी देख कीर्तिनाथ दौड़कर उनके पास आ गया था। झुककर उसने गुरू को साष्टांग प्रणाम किया और बोला- 'गुरूवर! आपकी कृपा से ये छः माह आनंदपूर्वक व्यतीत हो गये हैं। परंतु अब और एक पल भी यहां ठहरना हमारे लिये उचित नहीं है।'

गुरू ने विस्मयपूर्वक शिष्य की बात सुनी। उन्होंने पूछा- 'वत्स! ऐसा क्या कारण हो गया है? क्या तुम्हें यहां कोई कष्ट हुआ है? क्या यहां की नागरिकों से तुमने कोई झगड़ा कर लिया है? मुझे सारी बात विस्तार से कहो।'

कीर्तिनाथ ने कहा- 'गुरूवर। मैंने यहां पर किसी नागरिक से कोई झगड़ा नहीं किया है। परंतु यह नगर ही इस योग्य नहीं है कि हम यहां कुछ देर के लिये भी ठहरे। यह नगर बाहर से देखने में जितना भव्य और महान लगता है, वास्तव में भीतर से उतना ही हीन और अनुदार है। यहां साुध-संन्यासियों की अवहेलना तथा अपमान होता है। यही कारण है कि मैंने इस स्थान को तत्काल छोड़

देने का निवेदन किया है। यह कहकर कीर्तिनाथ ने अपने साथ घटित सारी घटना विस्तारपूर्वक अपने गुरू को कह सुनाई।

अपने शिष्य के अपमान तथा दुख के करुण -कथा ध्रुंगनाथ को बड़ा दुख हुआ। उन्होनें दुखी होकर उसी समय अग्रोहा को शाप दिय- यह नगर चौबीस घड़ी में जलकर भस्म हो जाएगा। शाप देकर ध्रुंगनाथ शिष्य कीर्तिनाथ के साथ अन्यत्र प्रयाण कर गये।

जाते-जाते कीर्तिनाथ ने अपना उपकार करने वाली कुम्हारिन को शाप के संबंध में बता दिया। कुम्हारिन भयभीत हो गई। उसने भी अपने घर वाले के साथ अपना सारा सामान समेट कर उसी दिन अग्रोहा छोड़ दिया। उसने नगरवासियों को भी शाप के विषय में सूचना दे दी। जैन-मतावलम्बी अग्रोहवासियों ने संन्यासी के शाप पर विश्वास नहीं किया। जिन्होंने इस बात पर विश्वास किया, उन्होंने तो नगर छोड़ दिया परंतु अधिकतर लोगों ने उपहास-पूर्वक इस बात को टाल दिया।

कहते हैं सच्चे साधु का शाप कभी झूठा नहीं होता। ध्रुंगनाथ पहुंचे हुए सच्चे साधु थे। उन्होंने अत्यंत दुखी होकर जो शाप दिया था, वह सत्य हो गया। अगले चौबीस घंटों में ही अकस्मात दैवी प्रकोप से अग्रोहा धू-धू कर जल उठा। भयंकर अग्नि की ऊंची प्रचण्ड लपटों ने चारों ओर से नगर को अपने में समेट लिया। तेज हवा ने आग को फैलने में गति प्रदान की। देखते ही देखते विशाल अट्टालिकाओं, सुंदर उद्यानों तथा सुरक्षित कोट से घिरा वह महानगर राख का ढेर बन गया। सच्चे साधु के अपमान ने अग्रोहा के वैभव को भस्मीभूत कर दिया। समाजवाद, लोकतंत्र तथा ट्रस्टीशिप की स्थापना का प्रतीक, एक महान आत्मा की स्मृति का महान चिन्ह सदा के लिये मिट गया। अग्रोहा अतीत के गर्भ में समा गया।

अग्रोहा उद्धार

श्रीचन्द सेठ केशर का व्यापारी था। उसके हृदय में अपनी जन्मभूमि अग्रोहा तथा अग्रसमाज के प्रति असीम श्रद्धा एवं आदर था। वह जब भी अपने व्यापार के सिलसिले में अग्रोहा की ओर से निकलता तो उसे वीरान और उजाड़ देखकर बड़ा दुखी होता। अपनी जन्मभूमि अग्रोहा की दुर्दशा देखकर उसका हृदय भीतर ही भीतर जार-जार करके रोता। वह चाहता था कि अग्रोहा फिर से बसे और पहले की ही भांति वह नगर पुन: समृद्ध, संपन्न तथा वैभवशाली हो, परंतु कैसे ? वह इतना सक्षम व सबल नहीं था कि अपने बूते पर यह कार्य संपन्न कर सकता। आर्थिक व राजनैतिक दोनों ही मामलों में वह इस योग्य नहीं था कि इस कार्य को पूरा करने का बीड़ा उठा सकता। फिर भी वह सदा इसी चिंता में रहता कि किसी सही व्यक्ति को ढूंढकर उसे इस कार्य के लिये प्रेरित करे।

एक बार वह एक हजार एक सौ ऊंटों पर केशर लादकर भारत में उसे बेचने के लिये निकल पड़ा। अपनी समस्त धन-सम्पत्ति लगाकर उसने यह केशर ली थी। उसने निर्णय किया था कि वह सारी केशर केवल एक ही व्यापारी को नकद मूल्य पर बेचेगा। अग्रोहा के पुनरुद्धार के लिये सक्षम व्यक्ति की खोज करने का यही तरीका उसे उचित लगा था।

नगर-नगर में घूमते श्रीचंद का काफिला महम नगर में पहुंचा। वहां सेठ हरभजशाह अरबों की सम्पत्ति का धनी था। वह अपनी एक नयी हवेली बनवा रहा था, जिसे वह केशर के रंग से रंगवाना चाहता था। उसके गुमाश्तों ने सेठ श्रीचंद के काफिले से केशर खरीदना चाहा, परंतु समस्त केशर एक साथ नकद मूल्य पर खरीदने की अद्‌भुत शर्त सुनकर वे सेठ हरभजशाह के पास गये। सारी बात सुनकर हरभजशाह जान गया कि यह प्रतिष्ठा का विषय है। यह एक प्रकार की चुनौती है जो जानबूझकर किसी के द्वारा दी गई है। उसने सारी केशर उसी समय खरीदवा कर नकद मूल्य चुका दिया।

श्री चन्द का अभियान अपने गन्तव्य स्थान के निकट तक पहुंच गया

था। उसे एक सक्षम व्यक्ति की खोज थी, जो उसे मिल गया था। जो व्यक्ति केवल अपनी हवेली को रंगने के लिये 1100 ऊंटों पर लदी केशर तत्काल नकद मूल्य देकर खरीद सकता है, वह नि:संदेह अक्षय सम्पदा का धनी होगा। यदि यह व्यक्ति अग्रोहा के उद्‌धार का बीड़ा उठा ले तो अपने धन-बल से उसे अवश्य पूरा कर सकता है। उसे किसी भी तरह से मातृभूमि के उद्धार के लिये तैयार करना ही पड़ेगा। श्री चन्द ने विचार कर सेठ हरभज शाह को एक पत्र लिखा-

सेठ हरभजशाह,

तुमने अपनी हवेली को रंगवाने के लिये 1100 ऊंट केशर खरीद की है, यह आश्चर्य की बात है। यह नि:सदेह सत्य है कि तुम अथाह-अपार धन-सम्पदा के मालिक हो। केशर का रंग तो क्या, तुम यदि चाहों तो अपनी हवेली सोने तथा चांदी की ईंटों से चुनवाकर खड़ी कर सकते हो। परंतु मित्र यह तुम्हारे कुबेर के खजाने का सही तथा सुदपयोग नहीं है। जब तक जन्मभूमि अग्रोहा निराश्रित, अपेक्षित और उजाड़ पड़ी है, हवेली बनाने में कोई गौरव नहीं है।

हमारी मातृभूमि अग्रोहा जो किसी समय तीनों लोकों में अपने वैभव, श्री सम्पदा, समृद्धि तथा सुंदरता के लिये प्रसिद्ध थी, आज श्री हीन और जनहीन खण्डहरों के रूप में बदलकर उपेक्षित हो गई है। हमने ही अपनी माता को भुला दिया है। अपने सुख और ऐश-आराम में भूलकर हमने अग्रोहा की ओर से अपनी आंखें फेर ली हैं। धरा-ध्वस्त जननी-जन्मभूमि अपने उद्‌धार के लिये चीख-चीख कर हमको बुला रही है।

सेठ हरभजशाह। यदि स्वधर्म और स्वदेश के प्रति तुममें श्रद्धा व आदर है तथा जन्मभूमि अग्रोहा के प्रति तनिक भी मान-सम्मान शेष है तो उसके उद्धार के प्रयत्न करो। अपनी अथाह सम्पत्ति से मातृभूमि को जीवन दान दो। तभी तुम्हारा अपने आपको श्रेष्ठी कहना सार्थक होगा। अन्यथा यह सब शान-शौकत, मान-अभिमान, गौरव, गर्व मिथ्या है। -श्री चन्द

श्री चन्द का पत्र हरभजशाह ने पढ़ा। उसका हृदय द्रवित हो गया। जननी-जन्मभूमि की दुर्दशा का विवरण पढ़कर उसकी आत्मा उसे ही कचोटने लगी। अग्रोहा के पुनरुद्धार की बात उसे लग गई। उसने अपनी हवेली का निर्माण-कार्य तत्काल रुकवा दिया। धन की उसके पास कमी नहीं थी। सुरक्षा की व्यवस्था के लिये उसने स्यालकोट (शाकल) के राजा विक्रमदास (रिसालू राजा) से सहायता मांगी। राजा रिसालू सेठ हरभजशाह से पहले ही प्रभावित था।

उसने अपनी सेना उसके बताये अनुसार अग्रोहा की सुरक्षा के लिये उसके साथ भेज दी।

हरभजशाह ने रिसालू राजा की सेना की मदद से अग्रोहा की सुरक्षा-व्यवस्था की तथा स्वयं अपनी दुकान वहां लगा ली। वह लोगों को पुन: अग्रोहा में आकर बसने, वहां उद्योग-धन्धे लगाने, व्यापार-व्यवसाय करने के लिये इस लोक तथा परलोक की बद पर रुपये उधार देने लगा। अपने अपार धन के बल पर नये आकर बसने वालों को वह समस्त प्रकार की आवश्यकता व जीवनोपयोगी सामग्री भी उपलब्ध कराने लगा। शनै:शनै: लोग इस ओर आकर्षित होने लगे। अग्रोहा फिर से आबाद हो गया। हरभजशाह का श्रेष्ठी नाम सार्थक हो गया। उसका धन मातृभूमि के हित में लगकर यश, सम्मान के रूप में सहस्त्रों गुणा होकर उसे मिला। वह धन्य हो गया। श्री चन्द का भी लूक्ष्य पूरा हुआ। उसने हरभजशाह को उसकी इस अपार सफलता पर अनेकों बधाई-पत्र लिखे। अग्रोहा की मिटटी के कण-कण में इन दोनों मातृभक्तों की स्मृति आज भी अंकित है।

✦ ✦ ✦

लक्खी तालाब

सेठ हरभजशाह इस लोक और परलोक की बद पर अग्रोहा के उद्धार के लिये लोगों को मनचाहा रुपया उधार देता था। उसी समय लक्खी सिंह नामक एक बंजारे के मन में भी उससे ऋण लेने की बात आई। उसने सोचा- परलोक को किसने देखा है ? इस लोक में क्यों न मैं इस सेठ से मनमाना रुपया लेकर ऐश करूं। यह विचार कर उसने सेठ हरभजशाह से परलोक की बद पर एक लाख रुपये का ऋण ले लिया।

ऋण लेने के पश्चात उसके मन में शंका उत्पन्न हुई कि क्या वास्तव में यह इतना सारा रुपया मुझे वापस परलोक में जाकर सेठ हरीभजशाह को चुकाना पड़ेगा ? यदि नहीं चुका सका तो मेरा क्या हाल होगा ? क्या मैं इस ऋण के भार से कभी मुक्त हो पाऊंगा या परलोक की बातें झूठी हैं। सेठ हरभजशाह मूर्ख है, जो इतना रुपया यों पानी की तरह बहा रहा है। यही सब कुछ सोचते वह वापस लौट रहा था कि राह में उसे एक साधू मिला। उसने उस साधू के समक्ष अपने मन की शंका रखी। अपने कृत्य के बारे में बताकर इसका परिणाम पूछा। सारी बात

सुनकर साधू ने कहा- लक्खी तुमने बदनीयत से रुपया लिया है, इसलिये तुझे यह सारी रकम ब्याज सहित अगले जन्म में सेठ हरभजशाह का बैल बनकर उसे चुकानी पड़ेगी। जब तक पूरी रकम मय ब्याज चुकती नहीं हो जाएगी, तुझे बार-बार बैल के रूप में जन्म लेकर हरभजशाह के घर मजदूरी करनी पड़ेगी। लक्खीसिंह यह जानकर पछताने लगा। वह तुरंत लौटकर हरभजशाह के पास गया और रकम वापस लौटा कर उसे उऋण कर देने के लिये कहा।

सेठ हरभजशाह ने रकम वापस लेने से इन्कार कर दिया। उसने कहा- मैंने तो परलोक की बद पर ये रुपये दिये हैं और इसकी कोई लिखा-पढ़ी भी नहीं की है। अत: मैं अब यह रकम इस लोक में कैसे वापस ले सकता हूं ?

हरभजशाह का जवाब सुनकर लक्खीसिंह दुखी व निराश होकर वापस लौट आया। वह फिर से उसी साधू के पास पहुंचा। सारी बात कर किसी तरह इस घोर अपराध से छुटकारा पाने का उपाय पूछने लगा।

साधू ने सारी बात जानकर उसे सलाह दी कि वह हरभजशाह के दिए हुए पैसों से अग्रोहा में एक बड़े तालाब का निर्माण करवा दे। अग्रोहा में वैसे ही पानी की कमी है। इस कार्य से उसे धर्म और ख्याति के साथ-साथ ऋण से भी मुक्ति मिलेगी। लक्खी बनजारे ने वैसा ही किया। उसने एक लाख रुपये लगाकर अग्रोहा के पास एक विशाल तालाब बनवाया। चारों ओर नहरें बनाकर उसमें पानी के भराव के लिये रास्ते बनाये। सुंदर शीतल जल से भरा विशाल सरोवर जब हिलोरे लेने लगा तो उसने उस पर पहरा बैठा दिया। हर किसी को उस तालाब का जल पीने की मुनादी करवा दी। उसने यह प्रचारित करवा दिया कि यह सरोवर सेठ हरभजशााह की निजी सम्पत्ति है। उसकी इजाजत के बिना किसी को इसका जल नहीं लेने दिय जा सकता।

होते-होते यह बात सेठ हरभजशाह के कानों तक पहुंची। पानी रहते लोगों को प्यासे मरते सुन हरभजशाह को अत्यन्त दुख हुआ। साथ ही उसके साथ अपना नाम जुड़ा होने के कारण अपार ग्लानि भी हुई। उन्होंने तत्काल लक्खीसिंह को बुलाकर उसे ऋण से मुक्ति का पत्र लिखकर दे दिया। सरोवर पर से तत्काल पहरा उठवा दिया। अग्रोहा की जनता को अब बिना अवरोध के पानी मिलने लगा। हरभजशाह के साथ-साथ लक्खी सिंह भी एक शानदार कार्य करके सदा के लिये अमर हो गया। आज भी अग्रोहा के पास उस विशाल सरोवर के अवशेष लक्खी तालाब के नाम से विद्यमान है।

सती शीला

सेठ हरभजशाह महम नगर का नगर-सेठ था। अथाह अपार धन-सम्पत्ति का मालिक था। देश-विदेश से उसका व्यापार होता था। राज्य में उसकी मान-प्रतिष्ठा थी। उसकी एक सुंदर, गुणवती कन्या थी, जिसका नाम शीला था। शीला के रूप गुण पर मोहित होकर स्यालकोट का राजा विक्रमदास (राजा रिसालू) उससे विवाह करने की इच्छा रखता था। उसने सेठ हरभजशाह के पास अपना संदेश भेजकर शीला का विवाह उसके साथ कर देने का अनुरोध किया, परंतु विदेशी होने के कारण रिसालू राजा के साथ हरभजशाह ने अपनी बेटी का विवाह करना उचित नहीं समझा। उसने शीला का विवाह रिसालू राजा के दीवान महताशाह से कर दिया। महता शाह व शीला में अगाध प्रेम था। वे एक दूसरे से पूर्णत: संतुष्ट व प्रसन्न थे। एक-दूसरे को चाहते, प्रेम करते वे सुख-पूर्वक रहने लगे। राजा रिसालू इस विवाह से कुछ रुष्ट हो गया। वह शीला पर पूरी तरह से विमोहित था। वह उसे किसी भी तरह से अपना बनाना चाहता था। अपने स्थान पर अपनी चहेती को अपने दीवान के साथ देखकर उसके मन में बड़ा क्षोभ था। महिता उसका एक नौकर है, उससे वह अपनी प्रिया को लेकर ही रहेगा। राजा रिसालू के मन में मैल आ गया। उसके मन के चोर ने उसे उकसाया। वह किसी प्रकार भी शीला को प्राप्त कर अपनी बनाने के यत्न करने लगा। इसके लिये उसने कूट चाल चली। महता शाह को उसने काम का बहाना बनाकर राज्य से दूर रोहिताश्वगढ़ भेज दिया।

सीमा के बाहर जाते ही जब शीला अकेली रह गई, उसने अपना मंत्र फेरना चालू किया। उसने अपना कुचक्र चालू कर शीला को बहला-फुसला कर किसी भांति अपने महलों में लाने का प्रयत्न करना आरंभ किया। उसने सर्वप्रथम अपनी परिचारिकाओं को शीला के पास अपना संदेश देकर भेजा। उनके साथ शीला के लिये कई प्रकार की अनुपम भेंट की वस्तुएं भी भेजीं। शीला राजा रिसालू के कुचक्र को भांप गईं। उसने कोई भेंट स्वीकार नहीं की और राजा की परिचारिकाओं को फटकार कर वापस भगा दिया। सेविकाओं को असफल लौट आया देख स्वयं राजा रिसालू अवसर निकालकर शीला के महलों में पहुंच गया। उन्होंने शीला को अपना

बनाने के लिये कई प्रकार से मनाना चाहा। अपनी पटरानी बनाने का प्रलोभन भी उसे दिया परंतु शीला न मानी। प्रलोभनों का जब शीला पर कोई असर नहीं हुआ तो बल व शक्ति से डरा-धमकाकर महताशाह को पदच्युत करने का भी भरसक प्रयत्न राजा रिसालू ने किया, परंतु सती शीला अपने पथ से लेशमात्र भी विचलित नहीं हुई। सभी प्रकार से प्रयत्न कर लेने पर भी विक्रमदास अपने कुचक्र में सफल नहीं हो सका तो उसने छल द्वारा शीला को बदनाम करने की ठानी। उसने एक नया ही कुचक्र रच डाला।

जिस दिन महताशाह को वापस लौटना था, उससे एक दिन पूर्व राजा रिसालू ने अपनी सेविकाओं के द्वारा अपनी अंगूठी रानी शीला के शयनागार में उसके बिस्तर में रखवा दी। उधर अपने सेवकों व दूतों को भी महिता के कान भरने के लिये तैयार किया। सिखाये हुए दूतों ने महताशाह के नगर में आते ही उसके कान भरने आरंभ कर दिये। उन्होंने महताशाह को शीला के विरुद्ध पूरी तरह से भड़का दिया। अपनी बातों से उन्होंने महताशाह को यह मान लेने के लिये बाध्य कर दिया कि शीला बदचलन और पथभ्रष्ट है। अपने पति की अनुपस्थिति में वह नित्य ही नियमित रूप से राजा रिसालू को अपने महलों में बुलाती थी। शीला के शयनगार में ढूंढने पर राजा रिसालू की कोई न कोई निशानी अवश्य ही मिल जाएगी। इस प्रकार की अनेकानेक बातें महता को सिखा दी गईं। भड़के हुए महिता ने महलों में आते ही शीला से इस मामले में जवाब तलब किया। शीला तो निर्दोष थी। उसने वास्तविक स्थिति तथा जो कुछ भी पीछे घटित हुआ था सब अपने पति को बिना छिपाए बता दिया। महता इससे संतुष्ट नहीं हुआ। उसके मन का संदेह नहीं मिटा। शीला की सारी बातें उसे बनावटी लगीं। वह शयन कक्ष की तलाशी लेने लगा। तलाशी में जब बिस्तरों में ही राजा रिसालू की अंगूठी उसे मिली, तब तो वह आपे से बाहर हो गया। शीला पथभ्रष्ट हो चुकी है, उसे पक्का विश्वास हो गया। उसने शीला को अत्यन्त अपमानित किया तथा कहा कि अब तुम मेरे किसी भी काम की नहीं रही हो, अत: मैं तुम्हारा त्याग करता हूं। तुम मेरी ओर से अब मुक्त हो तथा चाहे जहां, राजा रिसालू के पास अथवा अन्य कहीं पर भी जा सकती हो। मेरे घर में अब तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है।

निर्दोष व निष्पाप होते हुए भी शीला राजा रिसालू की दुष्ट प्रवृत्ति तथा कुचक्रों के कारण अपने पति की दृष्टि में पथभ्रष्ट कुलटा बनकर परित्यक्त हो गई। दु:खी होकर वह अपने पतिगृह से निकल गई। राजा रिसालू के डर के कारण

वह अब वहां ठहर भी नहीं सकती थी। वहां रहने पर उसका सतीत्व कभी भी खतरे में पड़ सकता था। अत: उसने तुरंत ही राजा रिसालु का राज्य ही छोड़ दिया। किसी तरह वह छिप-छिपाकर अग्रोहा पहुंच गई। वहां पहुंचकर अपने पिता की सलाह से वह अग्रोहा में ही गुप्त रूप से प्रवास करने लगी।

असत्य का अंधेरा घना भले ही हो, सत्य का प्रकाश एक न एक दिन उसे समाप्त कर ही देता है। शीला पर लगे झूठे लांछनों की असलियत भी कब तक छिपी रहती? समय पाकर उन्हीं दूतों ने महताशाह को भेद बता दिया, जिन्होंने पहले उसे भड़काया था। राजा रिसालू की बदनीयत उसके रचे हुए कुचक्र तथा उसके द्वारा किये गये अपने ही कुकर्मों के असफल प्रयासों को छिपाने के लिये सती शीला पर झूठे लांछन लगवाकर उसे बदनाम करने की सही बात जब महताशाह को ज्ञात हुई तो वह अपनी करनी पर रो पड़ा। उसे शीला पर अपने द्वारा किए गए अत्याचारों, उसको अपमानित करने तथा अपशब्दों से उसे बींध कर छलनी करने के अपने क्रूर व्यवहार को याद कर आत्म ग्लानि होने लगी। वह पछताने लगा। शीला को याद कर करके, सिर धुन-धुन के रोने लगा। अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिये उसने शीला से क्षमा मांगने का निश्चय किया, परंतु शीला कहां थी वहां? उसने शीला को खोजने का बहुतेरा प्रयत्न किया पर वह उसे नहीं मिली। हताश व निराश होकर वह शीला-शीला पुकारता उसे स्वयं ढूंढता, अपने पापों का फल भोगता घर-द्वार छोड़कर नगर-नगर, गांव-गांव डोलने लगा पर शीला न मिली। उसकी याद में वह पागल हो गया। मजनूं की भांति शीला के विरह में भटकता फिरता वह आखिर एक दिन अग्रोहा पहुंचा। वह बहुत ही दुखी व कृशकाय हो गया था। जीवन की लड़ाई से वह हार चुका था। तड़प-तड़प कर, कष्ट, शोक और पीड़ा में घुल-घुल कर वह अपनी काय को गला चुका था। अब वह अंतिम सांसें गिन रहा था।

शीला को जब अपने पति की इस दुर्दशा का ज्ञान हुआ तो वह उससे मिलने चल पड़ी। परंतु उस समय तक बहुत ही देर हो चुकी थी। महताशाह इस पापों भरे संसार को छोड़कर जा चुका था। अपना प्रायश्चित पूरा कर पंछी पिंजरे से उड़ चुका था। महताशाह ने शीला को त्याग दिया था तो भी शीला फिर भी भारतीय पतिव्रता नारी थी। वह सती थी। महिता उसका पति था। अत: उसने भी अपने प्राणों को त्याग दिया। उस महासती शीला की मढ़ी अग्रोहा में बनी हुई है, जहां हजारों व्यक्ति नित्य जाकर अपने श्रद्धासुमन चढ़ाते हैं।

अग्रश्रेणी का अन्त

आज से लगभग 2300 वर्ष पहले सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया था। छोटे-मोटे राज्यों-रजवाड़ों को जीतते हुए वह झेलम-चिनाब के संगम पर आकर रुका और अपने आगे के अभियान के संबंध में विचार करने लगा। झेलम-चिनाब के दोआबे में उस समय एक समृद्ध जनपद विद्यमान था। यह जनपद किसी समय प्राचीन अग्रोहा का ही एक 'अग्रश्रेणी' राज्य था, जो बाद में स्वतंत्र सत्ता संपन्न हो गया था। यह धन-वैभव से संपन्न, समृद्ध व शक्तिशाली था। उसके पास लगभग 40 हजार पैदल व 3 हजार घुड़सवारों की सबल सेना का संगठन था। उस समय वह अग्रश्रेणी जनपद कहलाता था।

इस दोआब के आसपास शिवि (शिबोक), शूद्रक, मल्लोई, अम्बष्ठ आदि अनेक छोटे-बड़े राज्य व जनपद थे। ये सभी स्वतंत्र सत्तावान थे। अग्रश्रेणी में रूद्यपि सेना का बहुत सुंदर व सशक्त संगठन था, तथापि वे समझते थे कि सत्ता-लोलुप सिकंदर की आधुनिकतम शास्त्रास्त्रों से सुसज्जित एवं सुनियोजित सुव्यवस्थित सेनाओं से अकेले लड़कर पार नहीं पाया जा सकेगा। अत: अग्रश्रेणी जनपद के गणपति ने इस कठिन वेला में एक साथ मिलकर सिकंदर का सामना करने के लिये सभी पड़ोसी राज्यों व जनपदों से सहयोग मांगा परंतु अन्य राज्य कोई निर्णय लेते कि वह इससे पूर्व ही सिकंदर ने जबरदस्त धावा बोल दिया। शिवि राज्य वाले घबराकर समर्पित हो गये। मल्लोई, शूद्रक व अन्य राज्य आपसी झंझटों में ही उलझे रहे। सिकंदर की सेनाएं आगे बढ़ चलीं। उसने अग्र श्रेणी जनपद के तीस मील भीतर तक घुस कर उसकी राजधानी को घेर लिया।

अग्रश्रेणी (जिसे यूनानियों ने अगल्लिस व वहां के निवासियों को अगलस लिखा है) के सुभटों ने बड़े पराक्रम-पूर्वक सिकंदर की सेनाओं का सामना किया था। कई दिनों तक लम्बा युद्ध चला परंतु सिकंदर जीत न सका, उसकी नवीनतम शास्त्रास्त्रों से सुसज्जित सेना भी उस नगर के द्वार की कील तक न हिला सकी। विश्व विजेता दांतों तले अंगुली दबाकर रह गया। परंतु युद्ध और प्रेम

का अंतिम परिणाम क्या होगा, यह आज तक कभी कोई समय से पूर्व निश्चयपूर्वक नहीं कह सका है। यह शतरंज और चौपट का खेल है। कब पासा पलट जाये तथा हार को जीत व जीत को हार में बदल डाले, कहा नहीं जा सकता। बड़े-बड़े युद्धों के निर्णय उनके अंतिम क्षणों में अप्रत्याशित रूप में बदले हैं। इतिहास इसका साक्षी है।

देशद्रोही हर युग में व हर देश में पैदा हो ही जाते हैं। आपसी मत भेद, मनमुटाव, प्रेयसी-पत्नी के झगड़े, सत्ता का लोभ आदि कई कारणों से कुल-कलंक बनने वाले विभीषणों व जयचन्दों की किसी युग में कमी नहीं रही है। अग्रश्रेणी भी देशद्रोही, कुल-कपूतों की नीचता का शिकार हुआ। यहां के दो महत्वपूर्ण पदधारी व्यक्ति गोकुलचन्द व रतनसेन अपनी तत्कालीन स्थिति से असंतुष्ट थे। वे स्वयं सत्ता हथियाना चाहते थे। सत्ता के लोभी व स्वार्थी-सदा ही अंधे होते हैं। अपने तनिक से स्वार्थ के लिये ऐसे व्यक्ति बड़ी से बड़ी राष्ट्रीय हानि करने से भी नहीं चूकते। ऐसा ही यहां हुआ। गोकुलचन्द व रतनसेन ने अपने लिये इस अवसर को उचित माना। उन्होंने विदेशी आक्रामक की मदद से सत्ता हथियाना चाहा। मूर्खों ने अपने हाथ से अपने पांव पर कुल्हाड़ी मारने की ठान ली। वे सिकंदर से मिल गये। सिकंदर ने उन दोनों की बेवकूफी से अपना उल्लू सीधा कर लिया। उसने उन्हें अग्रश्रेणी का शासन बना देने का वादा कर लिया। बदलने में उन देशद्रोहियों ने अपनी स्वतंत्रता व सुरक्षा को उसके हाथ बेच दिया।

अर्द्धरात्रि को दोनों की कुलांगारों ने मिलकर शस्त्र भण्डार में आग लगा दी तथा चुपके से नगर का द्वार भीतर से खोल दिया। सिकंदर की सेनाएं मौका पाते ही नगर में घुस पड़ीं। विदेशी आक्रामको ंने नगर में घुसते ही तहलका मचा दिया। बर्बर हिंसक यूनानियों ने निहत्थे, सोये-जागते, बाल वृद्ध, स्त्री-पुरुष सबको मारना व घरों को लूटना आरंभ कर दिया। शस्त्रागार में आग लग जाने से अग्रश्रेणी के नागरिक निहत्थे तथा निस्सहाय हो चुके थे, परंतु फिर भी वे बड़ी बहादुरी व वीरता से लड़े। बच्चा-बच्चा, जो भी जिसे मिला लेकर यूनानियों के सामने डट गया। वृद्ध युवक, बाल सभी युद्ध के मैदान में कूद पड़े।

बर्बर यूनानी भी एक बार यह दृश्य देखकर ठगे से रह गये। परंतु निहत्थे भारतीय वीर सुशिक्षित-सुसज्जित शस्त्रधारी यूनानियों से कब तक जूझते? धीरे-धीरे एक-एक कर सभी नागरिक रणक्षेत्र में खेत रहे।

पुरुषों को इस प्रकार समाप्त होते देख नारियों ने अपने को असुरक्षित मान

अपने सम्मान की रक्षा हेतु जलती आग में कूद कर प्राण दे दिये। अग्रश्रेणी के सभी नागरिक इस युद्ध की भेंट चढ़ गये। नंदकुमार इन्द्रसेन, अमरसेन, कुमार उत्तमचंद आदि अनेक योद्धाओं ने शत-शत यूनानियों को धरा-लुण्ठित कर अपना नाम इतिहास में अमर कर दिया। ललनाओं ने जलती ज्वाला में स्वयं को होम कर अपूर्व एवं अभूतपूर्व जौहर का उदाहरण प्रस्तुत किया।

विश्व सम्राट बनने के मद में शहीदों के शवों पर पांव रखता सिकंदर जब अग्रश्रेणी नगर में प्रविष्ट हुआ तो उस विश्व विजेता का स्वागत करने के लिये कोई बच्चा भी जीवित नहीं था। कोई नर या नारी पूरे नगर में उसे नहीं मिल सका, जिसे वह अपने अधीन बताकर अपने दम्भी मन को विजय का विश्वास दिला पाता। वहां केवल शव तथा राख बचे थे, जो उसका मुंह चिढ़ा रहे थे। वह जीता अवश्य परंतु विजय के उपहार में उसे मिला मात्र शमशान, मुर्दाघर तथा श्वानगिद्धों के झुण्ड। यह जीत थी या हार, वह समझ न पाया। विश्व विजेता ने ऐसी अद्‌भुत विजय कभी नहीं देखी थी। वह आश्चर्यचकित था। उसे लगा जैसे यहां आकर वह ठगा गया है। उसे इस जीत में भी अपनी हार का अहसास होने लगा। वह सकपका गया।

'खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे।' वह भी इस स्थिति में तिलमिला उठा। अपनी झेंप व जीत में छिपी करारी हार पर पर्दा डालने के लिये उसने आदेश दिय- इस मुर्दाघर को जलाकर भस्म कर दो। क्षण भर में सैनिकों ने आदेश का पालन किया। सारा नगर धू-धू कर जल उठा। कुछ घण्टों में सब समाप्त हो गया। भूगोल के पर्दे पर से अग्रश्रेणी का नाम मिट गया परंतु इतिहास तो मुंह बोलता है। उसके पन्ने सदा अग्रश्रेणी अथवा अगलिस के शौर्य की गाथाओं के गीत गाते रहेंगे।

भविष्य पुराण में आई हुई महालक्ष्मी वृत्तकथा अर्थात् अग्रवैश्य वंशानुकीर्तनम् के आधार पर डॉक्टर सत्यकेतु विद्यालंकार ने महाराज अग्रसेन का वंशवृक्ष इस प्रकार निर्धारित किया है :-

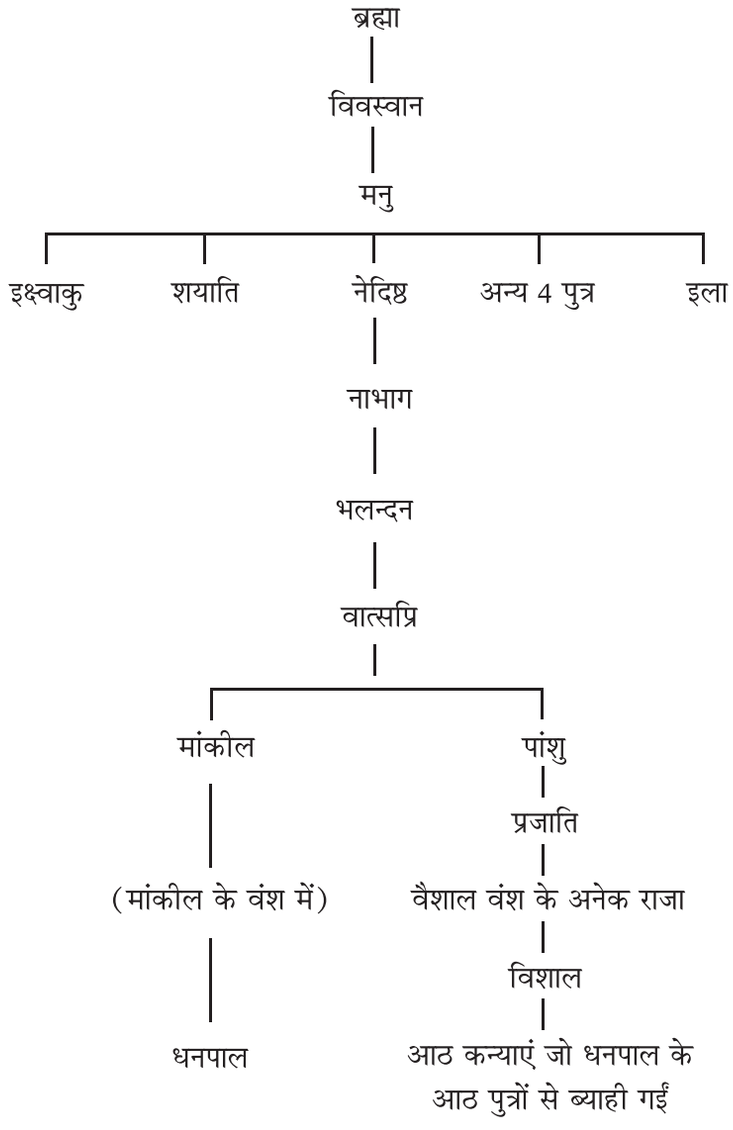

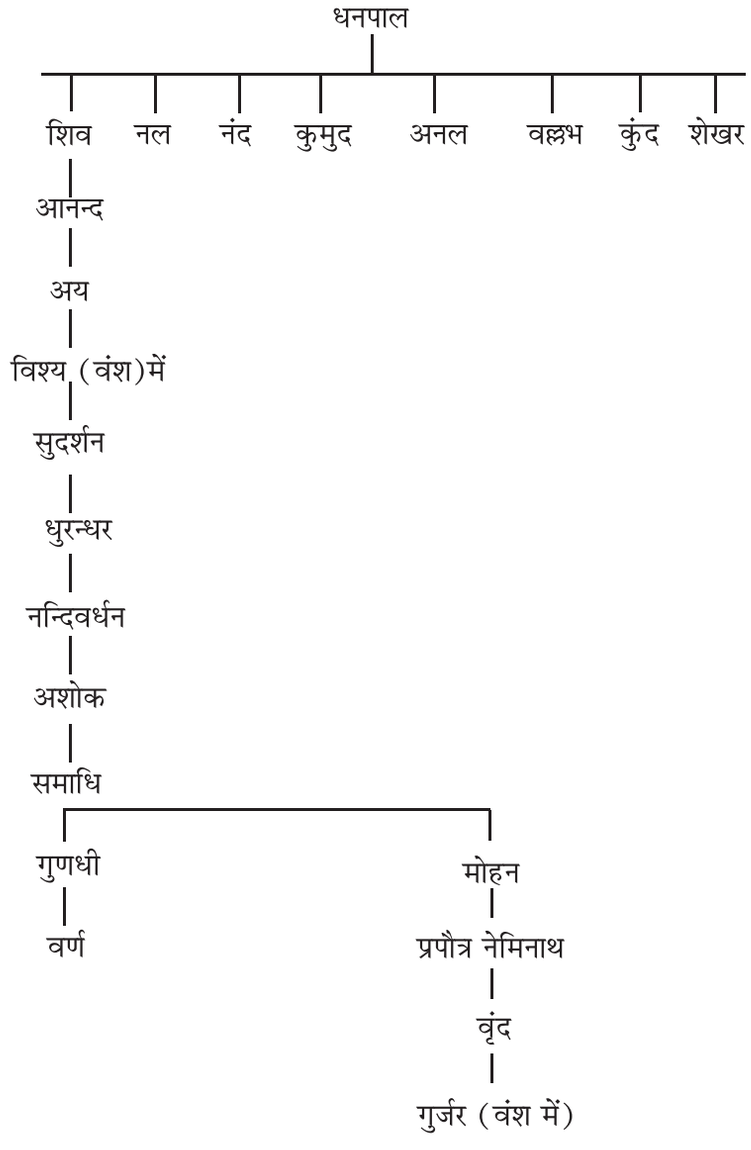

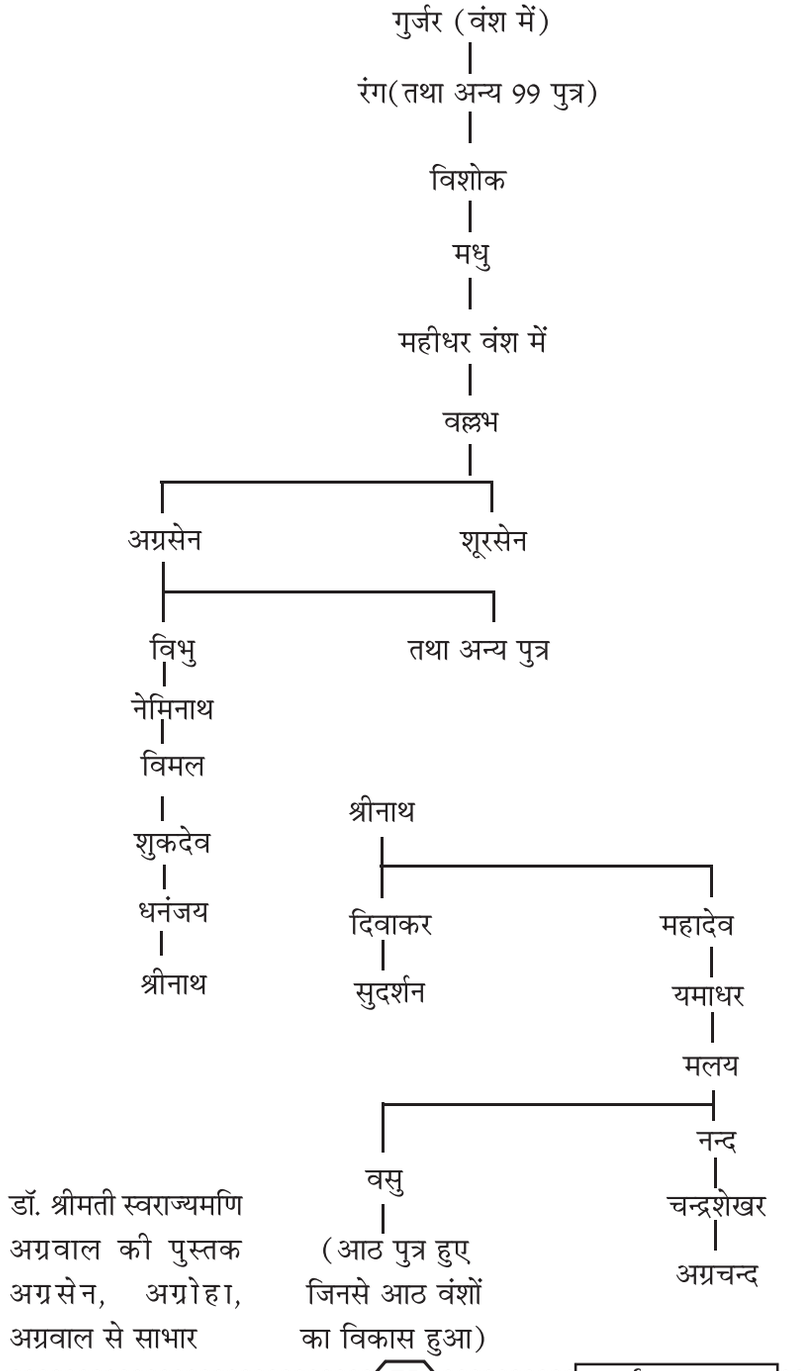

डॉ. श्रीमती स्वराज्यमणि अग्रवाल की पुस्तक अग्रसेन, अग्रोहा, अग्रवाल से साभार

महालक्ष्मी –वृत्त कथा अर्थात (श्री अग्रवैश्य –वंशानुकीर्तनम) के आधार पर 108 श्री विष्णु अग्रसेनजी महाराज का परिवार–

पत्नियां– 1. सुन्दरावती 2. मित्रा 3. चित्रा 4. शुभा 5. शीला 6.शिखा 7. शान्ता 8. रजा 9.चरा 10. शिरा 11. शची 12. सखी 13. रंभा 14. भवानी 15. सरसा 16.समा 17.––18.माधवी (पटरानी)

पुत्रियां – 1. दया 2. शांति 3.कला 4.कांति 5.तितिक्षा 6.अधरा 7.अमला 8.शिखा 9.मही 10. रमा 11.रामा 12.यामिनी 13.जलदा 14.शिवा 15.अमृता 16.अर्जिका 17.पुण्या 18.

पुत्र– 1. विभु 2.विरोचन 3.वाणी 4.पावक 5.अनिल 6.केशव 7.विशाल 8. रक्त 9.धन्वी 10. धामा 11. पामा 12. पयोनिधि 13. कुमार 14.पवन 15.माली 16.कदोकन 17.कुण्डल 18.कुश 19.विकाश 20. विरण 21. विनोद 22. विपुन 23.बली 24. वीर 25.हर 26. रव 27. दंती 28. दाड़ीमीदन्त 29.सुन्दर 30. कर 31. खर 32. गर 33. शुभ 34. पलश 35. अनिल 36. सुन्दर 37.धर 38.प्रखर 39.मल्लीनाथ 40. नंद 41. कुन्द 42. कुलुम्बक 43. कांति 44. शान्ति 45. क्षमाशाली 46. पययमाली 47.विलासद 48.

अग्रवाल जाति, उसके गोत्रों के प्रचलित , शुद्ध एवं अखिल भारतीय अग्रवाल– सम्मेलन नई दिल्ली द्वारा मान्य स्वरूप –

सम्भावित शुद्ध नाम	अग्रवाल सम्मेलन द्वारा मान्य	प्रचलित नाम
1. गर्ग	गर्ग	गर्ग, गरग, गर, गरवाल, गावाल,
2.गोमिल	गोयल	गोइल, गोयल, गामिल, गोहिन
3. गौतम	गोयन	गोइन, गोयन, गौन, गौण, गवन
4. वात्सल्य	बंसल	बांसल, बांशल,बंशल, वासल, बसल, बांसिल, बासिल, मासेल
5. कौशिक	कंसल	कंछल, कच्छल,कुच्छल,कचहल, कांसिल, कांसिल, कांसल, केंसल, कोसिल, कोसल
6. शाण्डिल्य	सिंहल	संगल, सिंगल, सींगल, सेंगल, सिंघल, सिंहल, सहगल
7. मांडया	मंगल	मंडल, मांडव, मांडव्य, मंगल

8. जेमिनि	जिन्दल इंदल	जेमिनि, मैजन, जावाहि, जिंदल,
9. ताण्डय	तिंगल	ताण्डेय
10. उरू	ऐरण	ऐरण, ऐरन, एरण, येरन, औरण , एरम्ब
11. धौम्य	धारण	धारण, धेरण, धेरन, धरेन, धान्याश
12. मुदगल	मधुकूल	ऐन, टेरण, टेरण, टेहलन, ढेलन, ढेलण, ढालन, मुदगल, मंगल, तेरन, तैर, मधुकुल, मौसिल, मोहन
13. वशिष्ठ	विन्दल	बिन्दल
14.मैत्रेय	मित्तल	मित्तल, मीतल, मैतल, मैथल, महवार
15. तैत्तिरेय	तायल	तगल, तागल, ताईल, तंगल, तिंगल, दिंगल, दीगल, अंढगल, टिंगल, ट्रिंगल, तिंगिल, तुंगल, तुंगाल, तुंदिल, तित्त्ति, तितल, तुंदल, नितुदन, तैतिरेय
16.भारदवाज	भन्दल	मंदल, मददल, मदल, भिंदल, बुगल
17. नागेन्दद्र	नागल	नागल, नागिल, नांगल
18. कश्यप	कुच्छल	कश्यप, कौशिक

5-6 अप्रैल 1975 को धर्मभवन, नई दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय अग्रवाल प्रतिनिधि सम्मेलन द्वारा गोत्रों के हिन्दी अंग्रजी मान्य स्वरूप

,

अग्रवाल जाति, उसके गोत्रों के प्रचलित, शुद्ध एवं अखिल भारतीय अग्रवाल सम्मेलन नई दिल्ली द्वारा मान्य स्वरूप-

संभावित शुद्ध नाम	**अग्रवाल सम्मेलन द्वारा मान्य**	**प्रचलित नाम**
1. गर्ग	गर्ग	गर्ग, गरग, गर, गरवाल, गावाल
2. गोमिल	गोयल	गोइल, गोयल, गामिल, गोहिन

3. गौतम		गोयन, गोइन, गोयन, गौन, गौण, गवन
4. वात्सल्य		बसल, बांसल, बांशल, बंसल, वासल, बसल, बांसिल, बासिल, मासेल
5. कौशिक	कंसल	क्रंछल, कच्छल, कुच्छल, कचहल, कासिल, कासिंल, कांसल, केंसल, कोसिल, कोसल
6. शाण्डिल्य	सिंहल	संगल, सिंगल, सींगल, सेंगल, सिंघल, सिंहल, सहगल
7. मांडया	मंगल	मंडल, मांडव, मांडव्य, मंगल
8. जेमिनि	जिन्दल	जेमिनि, मैजन, जावाहि, जिन्दल, इंदल
9. ताण्डय	तिंगल	ताण्डेय
10. उरू	ऐरण	ऐरण, ऐरन, एरण, येरन, औरण, एरम्ब
11. धौम्य	धारण	धारण, धेरण, धेरन, धरेन, धान्याश
12. मुद्गल	मधुकुल	ऐन, टेरण, टेलण, टेहलन, ढेलन, ढेलन, ढालन, मुद्गल, मंगल, तेरन, तैर, मधुकुल, मौसिल, मोहन
13. वशिष्ठ	विन्दल	बिन्दल
14. मैत्रेय	मित्तल	मित्तल, मीतल, मैतल, मैथल, महवार
15.तैत्तिरेय	तायल	तगल, तागल, ताईल, तंगल, तिंगल, दिंगल, दीगल, अढंगल, टिंगल, ट्रिंगल, तिंगिल, तुंगल, तुंगाल, तुंदिल, तित्ल, तित्तल, तुंदल, नितुन, तैतिरये
16. भारद्वाज	भन्दल	मंदल, मददल, मदल, भिंदल, बुगल
17. नागेन्दई	नागल	नागल, नागिल, नांगल
18. कश्यप	कुच्छल	कश्यप, कौशिक

5-6 अप्रेल 1975 को धर्म भवन, नई दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय अग्रवाल प्रतिनिधि सम्मेलन द्वारा गोत्रों के हिन्दी, अंग्रेजी, मान्य स्वरूप

अग्रवाल (Agrawal)

1. गर्ग	Garg	10. ऐरण	Airan
2. गोयल	Goyal	11. धारण	Dharan
3. गोयन	Goyanor	12. मधुकुल	Madhukal
4. बंसल	Bansal	13. बिन्दल	Bindal
5. कंसल	Kansal	14. मित्तल	Mittal
6. सिंहल	Singhal	15. तायल	Tayal
7.मंगल	Mangal	16. भन्दल	Bhandal
8. जिंदल	Jindal	17. नागल	Nagal
9. तिंगल	Tingal	18. कुच्छल	Kuchhal

प्रचलित मान्यता के आधार पर महाराज अग्रसेनजी के अठारह पुत्रों, उनके द्वारा कराये गये अठारह यज्ञों के ऋषियों व अठारह गोत्रों के नाम-

क्र.स.	नाम कुमार	नाम ऋषि	नाम गौत्र
1.	पुष्पदेव या गुलाबदेव	गर्ग	गर्ग
2.	गेंदूमल	गोयिल	गोयल
3.	करणचन्द	कश्यप	कच्छल
4.	मणिलाल	कौशिक	कांसिल
5.	बृन्ददेव	वशिष्ठ	बिन्दल
6.	टावनदेव	धौम्य	ढावन-ढालन
7.	सिन्धुपति	शांडिल्य	सिंघल
8.	जेत्रसंत्र	जैमिनि	जिन्दल
9.	मंत्रपति	मैत्रेय	मित्तल
10.	तंबोलकर्ण	ताण्डव	तुंगल
11.	ताराचन्द	तेत्तिदेव	तायल
12.	वीरभान	वत्स	बांसल
13.	वासुदेव	धन्वास	टेरण-धारण
14.	नरसेन	नागेन्द्र	नागल
15.	अमृतसेन	मांडव्य	मंगल
16.	इन्दुमल	एर	एरन
17.	माधवसेन	मुदगल	मधुकुल
18.	गोधर	गौतम	गोबन

लेखक परिचय

✦ **लेखक :** ओमप्रकाश गर्ग (मधुप)

✦ **जळम-** सांवणा सुद सातम संमत 1996

✦ **पढ़ाई-** हायर सैकण्डरी

✦ **लेखण-** हिन्दी, राजस्थानी दोनू भासावां में गद्य-पद्य लगोलग- शर्पूणखा, पिरथी पूत, बोल चिड़कली, सांसां रा सूतर, ओळू री ओळयां, उणियारो, गजलां रो गोर बंद, कुबद, कुण्डळी, चूंग्ट्या, श्रीगुरूशरणम्, अनभे उक्ल्या आखर (काव्य) कर्जदार, महाराज अग्रसेन, जग की रीत, दहेज (नाटक) एक ईंट एक रुपया (कहानी)

स्तरीय प्रसिद्ध पत्र पत्रिकावां आकासवाणी सूं प्रकासण अर प्रसारण

राजस्थान साहित्य अकादमी, राजस्थानी भाषा साहित्य संस्कृति अकादमी री कई समितियां में भागीदारी

-रंग भारती राष्ट्र स्तरीय काव्य प्रतियोगिता में सम्मानित

-कजरारी (हिन्दी त्रैमासिक) 314/25 त्रिनगर दिल्ली कहानी लेखण हेतु सम्मानित

संस्थवां- विश्व हिन्दू परिषद्, श्री गोपाल गौशाला, गौ सेवा आयेाग, अग्रवाल समाज, अन्तर प्रांतीय कुमार साहित्य परिषद्, बाड़मेर साहित्य संस्थान, नाथ साहित्य परिषद् अंर अलेखू धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक संस्थावां सूं सक्रिय जुड़ाव